# कौमुदी महोत्सव

H
812.8
V 59 K

डॉ० रामकुमार वर्मा

H
812.8
V 59 K

# कौमुदी महोत्सव

●

डॉ० रामकुमार वर्मा

Ramkumar Verma

Sahitya Bhawan

साहित्य भवन प्रा० लि०
इलाहाबाद

Allahabad

आठवीं आवृत्ति : १९६८

Library IIAS, Shimla
H 812.8 V 59 K
00039648

दो रुपया

INDIAN INSTITUTE OF ADVANCED STUDY
Acc. No. 39648
Date 18/5/73
SIMLA
H
812.8
V59

मुद्रक :
कामेश्वर नाथ भार्गव
सुपरफ़ाइन प्रिंटर्स
इलाहाबाद

समर्पण

स्वर्गीय पूज्य पिता

श्री लक्ष्मीप्रसाद जी वर्मा

की पवित्र स्मृति में—

उनका प्यारा पुत्र

कुमार

पितृमोक्ष अमावस्या

सं० २००६

# इस नाटक के सम्बन्ध में

भारतीय इतिहास और साहित्य में चन्द्रगुप्त मौर्य का नाम अमिट अक्षरों में चमकता रहेगा। वह संसार के महान् सम्राटों में है। बौद्ध और ब्राह्मण ग्रंथों में उसके संबंध में जो उल्लेख मिलते हैं उनसे ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य असाधारण व्यक्ति था। अपने वैभवशाली शासन-काल में उसने सिकन्दर महान् के सेनापति सेल्यूकस को ईस्वी पूर्व ३०५ में पराजित किया और उसकी पुत्री से विवाह किया। इस अभूतपूर्व विजय से इस सम्राट् ने अपने देश की वीरता के इतिहास को ग्रीस के इतिहासकारों तक पहुँचा दिया।

इधर वर्षों से चन्द्रगुप्त मौर्य के सम्बन्ध में एक निन्दनीय बात कही जाती थी कि वह मुरा नाम की शूद्रा का पुत्र था। प्रवाद यहाँ तक था कि चन्द्रगुप्त मौर्य शूद्रा मुरा से उत्पन्न नन्द ही का पुत्र था। इसी मुरा के नाम से चन्द्रगुप्त के साथ 'मौर्य' का वंश चला। यह बात बिलकुल ही मिथ्या है। इस संबंध में स्वर्गीय डा० लक्ष्मणस्वरूप ने 'चन्द्रगुप्त मौर्य' नाटक की भूमिका में जो अवतरण दिया है, वह बड़ा महत्वपूर्ण है। चन्द्रगुप्त मौर्य वंश का संस्थापक नहीं था। उसने इस वंश को नहीं चलाया, क्योंकि महात्मा बुद्ध के समय में मौर्य वंश के अस्तित्व का उल्लेख पालि साहित्य में पाया जाता है। मौर्य वंश को पालि साहित्य में क्षत्रिय वंश कहा गया है। इससे सिद्ध है कि चन्द्रगुप्त की कल्पित दासीमाता 'मुरा' के नाम से मौर्य वंश का आरंभ नहीं हुआ। यदि मुरा के नाम से आरंभ होता

तो 'मौर्य' के स्थान में 'मौरेय' होता। यदि चन्द्रगुप्त मौर्य वंश का प्रवर्त्तक होता तो महात्मा बुद्ध के समय में मौर्य वंश का अस्तित्व असंभव होता।

चन्द्रगुप्त मौर्य को नीच कुलोत्पन्न प्रसिद्ध करने में मुद्राराक्षस के रचयिता विशाखदत्त का बहुत बड़ा भाग है अथवा यों कहना चाहिए कि विशाखदत्त के शब्दों का यथार्थ न समझकर व्याख्याकारों ने भारी भूल की है और अर्थ का अनर्थ कर दिया है। मुद्राराक्षस नाटक में कई स्थलों पर चाणक्य चन्द्रगुप्त को 'वृषल' शब्द से संबोधित करता है। संस्कृत में 'वृषल' शब्द का अर्थ है 'शूद्र' या 'नीच'। नाटक के एक स्थल में चाणक्य द्वारा भरे दरबार में चन्द्रगुप्त के प्रति 'वृषल' शब्द का प्रयोग किया गया है। साधारणतया किसी व्यक्ति के प्रति 'वृषल' शब्द का प्रयोग अपमान-सूचक तथा कुत्सित अर्थ में होता है। अब विचारणीय बात यह है कि चन्द्रगुप्त चाणक्य का प्रिय शिष्य था, विशेष रूप से उसके स्नेह का पात्र था। क्या कोई भी आचार्य अपने सब से प्रिय शिष्य को 'वृषल' कह कर उसका अपमान कर सकता है? यदि एक क्षण के लिए यह मान भी लिया जाय कि चन्द्रगुप्त वास्तव में वृषल अर्थात् शूद्र था और चाणक्य ने यथार्थ शब्द का ही प्रयोग किया तो भरे दरबार में चन्द्रगुप्त के 'वृषलत्व' की घोषणा करना न केवल चन्द्रगुप्त का अपमान था वरन् स्वयं चाणक्य का अपमान करना होता। शूद्र के सचिव बनने से चाणक्य जैसे ब्राह्मण तथा महापंडित की महत्ता घट जाती।

यदि यह कहा जाय कि चाणक्य ने ब्राह्मणत्व के अभिमान या अहंकार के भाव से प्रेरित होकर चन्द्रगुप्त का जान-बूझ कर भरे दरबार में अपमान किया, तो सहसा सम्राट् और चन्द्रगुप्त जैसा पराक्रमी प्रभु कभी उस अपमान को सहन न करता। शक्ति-संपन्न प्रभुत्व के कारण न केवल वीर-शिरोमणि चन्द्रगुप्त के लिए वरन् साधारण से साधारण राजा के लिए भी भरे दरबार में इस प्रकार का अपमान असह्य होता। इसलिए मुद्राराक्षस नाटक में चन्द्रगुप्त के प्रति प्रयुक्त 'वृषल' शब्द का अर्थ शूद्र नहीं हो सकता। इस शब्द का वास्तविक अर्थ कुछ और ही है।

चन्द्रगुप्त मौर्य ने सीरिया की राजकुमारी सेल्यूकस की पुत्री से विवाह किया। इस प्रकार चन्द्रगुप्त की महारानी एक यूनानी रमणी थी। यूनानी राजकुमारी की सेवा-सुश्रूषा करने से लिए यूनानी दासियों तथा परि-चारिकाओं का चन्द्रगुप्त के महल में होना कोई आश्चर्य की बात नहीं हो सकती। यूनानी दासियाँ और परिचारिकाएँ यूनानी भाषा ही जानती होंगी और चन्द्रगुप्त को यूनानी भाषा में महाराज कहती होंगी। महाराज के लिए उस समय यूनानी भाषा में प्रचलित शब्द था बेसिलस (Basileos)।

चन्द्रगुप्त के दरबार में एक यूनानी राजदूत मेगस्थनीज नामी रहा करता था। इस दूत के अंगरक्षक तथा दूसरे सहकारी अवश्य ही यूनानी रहे होंगे। ये सब चन्द्रगुप्त को यूनानी भाषा में ही महाराज कहते रहे होंगे। इस प्रकार चन्द्रगुप्त के राजमहल और राजदरबार में यूनानी शब्द 'बेसिलस' अर्थात् 'महाराज' का प्रचुर प्रचार हो गया होगा। 'बेसिलस' का प्राकृत रूप है 'बसल' इसी का संस्कृत रूपान्तर है 'वृषल'। मेरी सम्मति में मुद्राराक्षस नाटक में चन्द्रगुप्त के प्रति प्रयुक्त 'वृषल' शब्द का वास्तविक अर्थ है 'महाराज'। विशाखदत्त ने इसी अर्थ में 'वृषल' का प्रयोग किया था। लेकिन पीछे से यूनानी शब्द 'बेसिलस' के लोप हो जाने से 'वृषल' का वास्तविक अर्थ अज्ञात हो गया। व्याख्याकारों और टीकाकारों ने 'वृषल' शब्द का यथार्थ अर्थ न समझ कर चन्द्रगुप्त को 'शूद्र' बना दिया और उसके साथ घोर अन्याय किया।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि चन्द्रगुप्त मौर्य क्षत्रिय था जिसकी वंश-परंपरा महात्मा बुद्ध के समय से चली आती थी। चन्द्रगुप्त मौर्य अद्भुत वीर और महान् पराक्रमी था। उसके संबंध में इतिहासकारों ने प्रशस्तियाँ लिखी हैं जो उसे संसार के सम्राटों में महान् घोषित करती हैं। स्वर्गीय डा० बेनीप्रसाद लिखते हैं—

चन्द्रगुप्त मौर्य ने कम से कम सारे उत्तर भारत में एक राज्य स्थापित

कर दिया था।[1]

डा० ताराचन्द लिखते हैं :—

चन्द्रगुप्त युद्धप्रिय और उत्साही शासक था और उसने पश्चिमी प्रान्तों की विजय प्रारम्भ की।[2]

श्री जयशंकर प्रसाद ने चन्द्रगुप्त मौर्य पर विशेष अध्ययन और अन्वेषण कर चन्द्रगुप्त नाटक लिखा है। उस नाटक की भूमिका में भी उन्होंने चन्द्रगुप्त को अत्यन्त पराक्रमशाली लिखा है। निम्नलिखित अवतरणों से चन्द्रगुप्त के वीरत्व और पराक्रम की अनेक सूचनाएँ मिलती हैं—

"ग्रीक ग्रंथकारों के द्वारा हम यह पता पाते हैं कि ई० पूर्व ३२६ में उसी समय चन्द्रगुप्त शत्रुओं से वदला लेने के उद्योग में अनेक प्रकार का कष्ट, मार्ग में झेलते-झेलते भारत की अर्गला तक्षशिला नगरी में पहुँचा था। तक्षशिला के राजा ने भी महाराज पुरु से अपना वदला लेने के लिए सिकन्दर के लिए भारत का द्वार मुक्त कर दिया था। उन्हीं ग्रीक ग्रंथकारों के द्वारा यह पता चलता है कि चन्द्रगुप्त ने एक सप्ताह भी अपने को परमुखापेक्षी नहीं वना रखा और वह क्रुद्ध होकर वहाँ से चला आया।[3]

यह अनिश्चित है कि सिकन्दर को मगध पर आक्रमण करने को उत्तेजित करने के लिए ही चन्द्रगुप्त उसके पास गया था अथवा ग्रीक युद्ध की शिक्षा-पद्धति सीखने के लिए वहाँ गया था। उसने सिकन्दर से तक्षशिला में अवश्य भेंट की, यद्यपि उसका कोई कार्य वहाँ नहीं हुआ पर उसे ग्रीक-वाहिनी रणचर्य्या अवश्य ज्ञात हुई जिससे कि उसने पर्वतीय सेना से मगध राज्य का ध्वंस किया।[4]

---

[1] हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता ( १९३१ ) डा० बेनीप्रसाद, पृष्ठ २९८

[2] हिन्दुस्तान का इतिहास ( १९३४ ) डा० ताराचन्द, पृष्ठ ६४

[3] चन्द्रगुप्त (श्री जयशंकर प्रसाद) सं० २००२, प्रस्तावना, पृष्ठ २३

[4] वही, पृष्ठ २४

क्रमशः वितस्ता, चन्द्रभागा, इरावती के प्रदेशों को विजय करता हुआ सिकन्दर विपासा तट तक आया और मगध राज्य का प्रचण्ड प्रताप सुनकर उसने दिग्विजय की इच्छा को त्याग दिया और ३२५ ई० पूर्व में फिलिप नामक पुरुष को क्षत्रप वना कर आप कावुल की ओर गया। दो वर्ष के बीच में चन्द्रगुप्त भी उसी प्रान्त में घूमता रहा और जब वह सिकन्दर का विरोधी बन गया था तो उसी ने पार्वत्य जातियों को सिकन्दर से लड़ने के लिए उत्तेजित किया जिसके कारण सिकन्दर को इरावती से पाटल तक पहुँचने में दस मास समय लग गया और इस बीच में नये आक्रमणकारियों से सिकन्दर की बहुत क्षति हुई।[1]

सिकन्दर के भारतवर्ष में रहने ही के समय में चन्द्रगुप्त द्वारा प्रचारित सिकन्दर-द्रोह पूर्णरूप से फैल गया और इसी प्रकार कुछ पार्वत्य राजा चन्द्रगुप्त के विशेष अनुगत हो गए थे। उनको रणचतुर बनाकर चन्द्रगुप्त ने एक अच्छी शिक्षित सेना प्रस्तुत कर ली थी जिसकी परीक्षा प्रथमतः ग्रीक सैनिकों ने ली। इसी गड़बड़ में फिलिप मारा गया और उस प्रदेश के लोग पूर्ण रूप से स्वतंत्र बन गए। चन्द्रगुप्त को पर्वतीय सैनिकों से बड़ी सहायता मिली और वे उसके मित्र बन गए। विदेशी शत्रुओं के साथ भारतवासियों का युद्ध देखकर चन्द्रगुप्त एक रणचतुर नेता बन गया। धीरे-धीरे उसने सीमावासी लोगों को एक में मिला लिया। चन्द्रगुप्त और पर्वतेश्वर विजय के हिस्सेदार हुए और सम्मिलित शक्ति से मगध राज करने के लिए चल पड़े।[2]

अपमानित चन्द्रगुप्त बदला लेने के लिए खड़ा था, मगध राज्य की दशा बड़ी शोचनीय थी। नन्द आन्तरिक विग्रह के कारण जर्जरित हो गया था। चाणक्य-चालित म्लेच्छ सेना कुसुमपुर को चारों ओर घेरे खड़ी थी। चन्द्रगुप्त अपनी शिक्षित सेना को बराबर उत्साहित करता हुआ सुचतुर रण-सेनापति का कार्य करने लगा।

---

[1]चन्द्रगुप्त (श्री जयशंकर प्रसाद) सं० २००२, प्रस्तावना, पृष्ठ २४,
[2]वही, पृष्ठ २६

पन्द्रह दिन तक कुसुमपुर को बराबर घेरे रहने के कारण और बार-बार खण्ड युद्ध में विजयी होने के कारण चन्द्रगुप्त एक प्रकार से मगध-विजयी हो गया।[1]

केवल नन्द को ही पराजित करने से चन्द्रगुप्त को एक बड़ा विस्तृत राज्य मिला जो कि असम से लेकर भारत के मध्यप्रदेश तक व्याप्त था।[2]

इस समय चन्द्रगुप्त का शासन भारतवर्ष में प्रधान था और छोटे-छोटे राज्य यद्यपि स्वतंत्र थे, पर वे भी चन्द्रगुप्त के शासन से सदा भयभीत होकर मित्र-भाव का बर्ताव रखते थें। उसका राज्म पांडुचेरी और कानानूर से हिमालय की तराई तक तथा सतलज से असम तक था।[3]

उपर्युक्त अवतरणों से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त सद्वंश-क्षत्रिय था और उसने जीवन भर युद्ध ही में अपने जीवन की चरम सफलता देखने का प्रयत्न किया। उसने ग्रीक सैन्य-संचालन और संगठन की ऐसी अपूर्व शिक्षा प्राप्त की थी कि वह अपने समय का बड़ा तेजस्वी वीर और रणकुशल नेता बन गया था। उसका आतंक सर्वव्यापी था और प्रतापी शत्रुओं को अशान्त कर देने वाला था।

आचार्य चाणक्य चन्द्रगुप्त मौर्य के आचार्य और गुरु थे। उनके ग्रंथ 'अर्थशास्त्र' से उनके पाण्डित्य और अन्तर्दृष्टि का परिचय मिलता है। वास्तव में चन्द्रगुप्त की उन्नति के मूल में चाणक्य की ही कूटनीति और अन्तर्दृष्टि थी। नन्द का विनाश करने में चाणक्य का ही हाथ था। अपने अर्थशास्त्र में स्वयं चाणक्य लिखते हैं—

"येन शस्त्रं च शास्त्रं च नन्दराज गता च भूः,
अमर्षेणोद्घृतान्याशु तेन शास्त्रमिदं कृतं।"

इतिहास से स्पष्ट है कि वे प्रखर प्रतिभावान एवं कूट राजनीतिज्ञ थे। हमारे भारतीय साहित्य में चाणक्य और चन्द्रगुप्त के इतिहास के इतिवृत्त पर कुछ नाटक लिखे गए हैं। इन सभी नाटकों में मैंने यह अनुभव किया है

[1]चन्द्रगुप्त (श्री जयशंकर प्रसाद) सं० २००२, प्रस्तावना, पृष्ठ २८

[2]वही, पृष्ठ ३२। [3]वही, पृष्ठ ३३

कि चन्द्रगुप्त के व्यक्तित्व के साथ न्याय नहीं किया गया। यद्यपि यह नाटक विविध दृष्टिकोणों से लिखे गए हैं तथापि किसी दृष्टिकोण में भी चन्द्रगुप्त, जो अत्यन्त पराक्रमी, वीर और शक्ति में अप्रतिम था, अपने व्यक्तित्व में उभर नहीं सका। पहले तो उसे शूद्र मानकर हमारी दृष्टि में उसे राजोचित मर्यादा से हीन चित्रित किया गया, फिर आचार्य चाणक्य के व्यक्तित्व का बोझ उस पर सभी कालों में जिरह-बख्तर की भाँति लदा रहा। जिरह-बख्तर से उसकी रक्षा अवश्य हुई किन्तु उस पर इतना बोझ पड़ा रहा कि स्वाभाविकता के साथ वह अंग-सचालन भी नहीं कर सका। चन्द्रगुप्त ने अपने आचार्य की नीति से सदैव ही विजय प्राप्त की, चन्द्रगुप्त ने उन्हें सदैव ही आचार्य के नाते मस्तक झुकाया, किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि चन्द्रगुप्त इतना गया-बीता नरेश था कि उसे अपनी राजोचित मर्यादा और आत्मसम्मान का भी ज्ञान नहीं था। जिसने सिकन्दर के सम्पर्क में आकर शासक और विजेता के आदर्शों को समझा और असभ्य पर्वतीय सेनाओं का संगठन किया, भयानक रणों में सम्मुख रह कर असीम साहस और धैर्य से उनका नेतृत्व किया; जीवन और मृत्यु की विभाजक सूक्ष्म रेखाओं पर विद्युत् गति से चला और तलवार की धार जो जीवन-सूत्र के टुकड़े करने के लिए सदैव झूलती रही, उसे सदैव चुनौती देता रहा, वह चन्द्रगुप्त चाणक्य के सामने इतना दब्बू और आतंकित बना रहा कि अपनी राजनीतिक-सामाजिक मर्यादा की हानि देखकर वह उसका प्रतिकार भी नहीं कर सका और अपने आत्म-सम्मान के संबंध में अपने अखंड वीरत्व की एक चिनगारी प्रकट नहीं कर सका? निस्संदेह यह चंद्रगुप्त के व्यक्तित्व के प्रति भारी अन्याय हुआ है। इस संबंध में हम तीन नाटक प्रतिनिधि रूप से लेते हैं। पहला नाटक श्री विशाखदत्त रचित मुद्राराक्षस है जो संस्कृत में लिखा गया और जिनकी रचना पाँचवीं शताब्दी के आसपास की है। दूसरा नाटक स्वर्गीय श्री द्विजेन्द्रलाल राय रचित चंद्रगुप्त नाटक है जिसकी रचना सन् १९०९ में बंगला भाषा में हुई और तीसरा नाटक स्वर्गीय श्री जयशंकर प्रसाद रचित चंद्रगुप्त नाटक

है जिसकी रचना हिन्दी में सन् १९३१ में हुई। संस्कृत, बंगला और हिन्दी के इन तीनों प्रतिनिधि नाटकों में चन्द्रगुप्त के व्यक्तित्व के प्रति अन्याय किया गया है। चाणक्य और चन्द्रगुप्त के इतिहास से संबंध रखने वाले इतिवृत्त में ( जिस पर उपर्युक्त तीनों नाटकों की रचना हुई है ) केवल एक ही प्रसंग ऐसा है जिसमें चंद्रगुप्त के व्यक्तित्व के उभरने का अवसर आता है। वह प्रसंग है 'कौमुदी महोत्सव' का। कुसुमपुर की विजय के उपरान्त सम्राट् चन्द्रगुप्त शरदकाल की पूर्णिमा के अवसर से लाभ उठाकर अपनी विजय को मंगलमयी और आनन्ददायिनी बनाने के लिए 'कौमुदी महोत्सव' की घोषणा करता है और चाणक्य उसका निषेध कर देता है। चंद्रगुप्त की यह कुसुमपुर में प्रथम राज-घोषणा है और उसके निषेध से चंद्रगुप्त का क्षुब्ध होना स्वाभाविक है।

उपर्युक्त नाटकों में 'कौमुदी महोत्सव' प्रसंग पर कम या अधिक चर्चा की गई है, चंद्रगुप्त ने अपने अधिकारों के लिए संघर्ष भी करना चाहा है, किन्तु वह न तो संघर्ष ही कर सका है और न अपने मनोविज्ञान में स्वाभाविकता ही ला सका है। जैसे चार-पाँच चींटियाँ किसी मरे हुए चींटे को घसीट कर दीवाल के ऊपर ले जाती हैं, उसी तरह कथोपकथन के कुछ वाक्य चंद्रगुप्त के व्यक्तित्व को घसीट कर संघर्ष की चोटी पर लाना चाहते हैं। चंद्रगुप्त जो कुछ भी कहना चाहता है वह 'बन्दरघुड़की' सा ज्ञात होता है, और चाणक्य के थोड़े से रोष दिखलाने से सीधे रास्ते पर आ जाता है। इन नाटकों में चंद्रगुप्त जैसे वीर सम्राट् की वही दशा ज्ञात होती है जो कुछ समय पहले हमारे देशी नरेशों की थी जो पोलिटिकल एजेण्ट के थोड़े से ही कड़े रुख से पानी-पानी हो जाते थे। उनमें न संघर्ष लेने की शक्ति थी और न अपने विचारों को स्पष्ट करने की क्षमता। कठपुतली की तरह वे नाचते थे और रस्सी खींचने से वे ऊपर चढ़ते थे और रस्सी ढीली करने से वे नीचे खिसक आते थे। चाणक्य के हाथों भी चंद्रगुप्त की ऐसी ही दुर्दशा हुई है। उदाहरण के लिए मैं तीनों नाटकों के कौमुदी महोत्सव सम्बन्धी प्रसंग आपके सामने रखता हूँ। आप

देखें कि चन्द्रगुप्त के व्यक्तित्व के प्रति कहाँ तक न्याय किया गया है। सबसे पहले विशाखदत्त का मुद्राराक्षस नाटक लीजिये। यह प्रसंग तीसरे अंक में वर्णित है। यह हिन्दी अनुवाद भारतेन्दु कृत है।

---

## तृतीय अंक

### स्थान—राजभवन की अटारी

**[ कंचुकी आता है ]**

**कंचुकी**

है रूप आदिक विषय जो राखे हिये बहु लोभ सों।
सो मिटे इंद्रीगन सहित ह्वै सिथिल अति ही छोभ सों॥
मानत कहो कोउ नाहिं, सब अंग अंग ढीले ह्वै गये।
तौहुँ त तृष्णे! क्यों तजति तू मोहिं बूढ़ोहू भये?॥

( **आकाश की ओर देख कर** ) अरे! अरे! सुगांगप्रासाद के लोगों सुनो! महाराज चन्द्रगुप्त ने तुम लोगों को यह आज्ञा दी है कि 'कौमुदी महोत्सव' के होने से परम शोभित कुसुमपुर को मैं देखना चाहता हूँ! इससे उस अटारी को बिछौने इत्यादि से सजा रखो! देर क्यों करते हो? ( **आकाश की ओर देखकर** ) क्या कहा कि क्या महाराज चन्द्रगुप्त नहीं जानते कि कौमुदी महोत्सव अबकी न होगा?

दुर दईमारो! क्या मरने को लगे हो? शीघ्रता करो!

बहु फूल की माल लपेटि कै खंभन धूम-सुगंध सों ताहि धुपाइए!
तापै चहूँ दिसि चंद छपा से सुसोभित चौंर घने लटकाइए॥
भार सों चारु सिंहासन के मुरछा में धरा परी धेनु सी पाइए।
छींटिकै तापैं गुलाब मिल्यौ जल चंदन ता कहँ जाइ जगाइए॥

( **आकाश की ओर देखकर** ) क्या कहते हो कि 'हम लोग अपने

है जिसकी रचना हिन्दी में सन् १९३१ में हुई। संस्कृत, बंगला और हिन्दी के इन तीनों प्रतिनिधि नाटकों में चन्द्रगुप्त के व्यक्तित्व के प्रति अन्याय किया गया है। चाणक्य और चन्द्रगुप्त के इतिहास से संबंध रखने वाले इतिवृत्त में ( जिस पर उपर्युक्त तीनों नाटकों की रचना हुई है ) केवल एक ही प्रसंग ऐसा है जिसमें चंद्रगुप्त के व्यक्तित्व के उभरने का अवसर आता है। वह प्रसंग है 'कौमुदी महोत्सव' का। कुसुमपुर की विजय के उपरान्त सम्राट् चन्द्रगुप्त शरदकाल की पूर्णिमा के अवसर से लाभ उठाकर अपनी विजय को मंगलमयी और आनन्ददायिनी बनाने के लिए 'कौमुदी महोत्सव' की घोषणा करता है और चाणक्य उसका निषेध कर देता है। चंद्रगुप्त की यह कुसुमपुर में प्रथम राज-घोषणा है और उसके निषेध से चंद्रगुप्त का क्षुब्ध होना स्वाभाविक है।

उपर्युक्त नाटकों में 'कौमुदी महोत्सव' प्रसंग पर कम या अधिक चर्चा की गई है, चंद्रगुप्त ने अपने अधिकारों के लिए संघर्ष भी करना चाहा है, किन्तु वह न तो संघर्ष ही कर सका है और न अपने मनोविज्ञान में स्वाभाविकता ही ला सका है। जैसे चार-पाँच चींटियाँ किसी मरे हुए चींटे को घसीट कर दीवाल के ऊपर ले जाती हैं, उसी तरह कथोपकथन के कुछ वाक्य चंद्रगुप्त के व्यक्तित्व को घसीट कर संघर्ष की चोटी पर लाना चाहते हैं। चंद्रगुप्त जो कुछ भी कहना चाहता है वह 'बन्दरघुड़की' सा ज्ञात होता है, और चाणक्य के थोड़े से रोष दिखलाने से सीधे रास्ते पर आ जाता है। इन नाटकों में चंद्रगुप्त जैसे वीर सम्राट् की वही दशा ज्ञात होती है जो कुछ समय पहले हमारे देशी नरेशों की थी जो पोलिटिकल एजेंट के थोड़े से ही कड़े रुख से पानी-पानी हो जाते थे। उनमें न संघर्ष लेने की शक्ति थी और न अपने विचारों को स्पष्ट करने की क्षमता। कठपुतली की तरह वे नाचते थे और रस्सी खींचने से वे ऊपर चढ़ते थे और रस्सी ढीली करने से वे नीचे खिसक आते थे। चाणक्य के हाथों भी चंद्रगुप्त की ऐसी ही दुर्दशा हुई है। उदाहरण के लिए मैं तीनों नाटकों के कौमुदी महोत्सव सम्बन्धी प्रसंग आपके सामने रखता हूँ। आप

देखें कि चन्द्रगुप्त के व्यक्तित्व के प्रति कहाँ तक न्याय किया गया है। सबसे पहले विशाखदत्त का मुद्राराक्षस नाटक लीजिये। यह प्रसंग तीसरे अंक में वर्णित है। यह हिन्दी अनुवाद भारतेन्दु कृत है।

---

## तृतीय अंक

### स्थान—राजभवन की अटारी

[ कंचुकी आता है ]

**कंचुकी**

हैं रूप आदिक विषय जो राखे हिये बहु लोभ सों।
सो मिटे इंद्रीगन सहित ह्वै सिथिल अति ही छोभ सों॥
मानत कहो कोउ नाहिं, सब अंग अंग ढीले ह्वै गये।
तौहुँ त तृष्णे! क्यों तजति तू मोहिं बूढ़ोहू भये?॥

( **आकाश की ओर देख कर** ) अरे! अरे! सुगांगप्रासाद के लोगों सुनो! महाराज चन्द्रगुप्त ने तुम लोगों को यह आज्ञा दी है कि 'कौमुदी महोत्सव' के होने से परम शोभित कुसुमपुर को मैं देखना चाहता हूँ! इससे उस अटारी को बिछौने इत्यादि से सजा रखो! देर क्यों करते हो? ( **आकाश की ओर देखकर** ) क्या कहा कि क्या महाराज चन्द्रगुप्त नहीं जानते कि कौमुदी महोत्सव अबकी न होगा?

दुर दईमारो! क्या मरने को लगे हो? शीघ्रता करो!

वहु फूल की माल लपेटि कै खंभन धूम-सुगंध सों ताहि धुपाइए!
तापै चहूँ दिसि चंद छपा से सुसोभित चौंर घने लटकाइए॥
भार सों चारु सिंहासन के मुरछा में धरा परी धेनु सी पाइए।
छींटिकै तापैं गुलाब मिल्यौ जल चंदन ता कहँ जाइ जगाइए॥

( **आकाश की ओर देखकर** ) क्या कहते हो कि 'हम लोग अपने

काम में लग रहे हैं !' अच्छा-अच्छा ? झटपट सब सिद्ध करो, देखो ! वह महाराज चन्द्रगुप्त आ पहुँचे !

बहु दिन श्रम करि नंद नृप बह्यो राज-धुर जौन ।
बालेपन ही में लियो चंद सीस नित तौन ।।
डिगत न नेकहु विषम पथ, दृढ़ प्रतिज्ञ, दृढ़गात ।
गिरन चहत, सँभरत बहुरि, नेकु न जिय घबरात ।।

( नेपथ्य में ) इधर महाराज ! इधर !

[ राजा और प्रहरी आते हैं ]

राजा—( आप ही आप ) राजा उसी का नाम है जिसमें अपनी आज्ञा चले ! दूसरे के भरोसे राज करना भी एक बोझा ढोना है, क्योंकि—

जो दूजे को हित करे तो खोवै निज काज ।
जो खोयो निज काज तो कौन बात को राज ? ।।
दूजे ही को हित करै तौ वह परवस मूढ़ ।
कठपुतरी सो स्वाद कछु पावै कबहुँ न कूढ़ ।।

और राज्य पाकर भी इस दुष्ट राजलक्ष्मी को सँभालना बहुत कठिन है, क्योंकि

कूर दसा भाखति पियहि, चंचल सहज सुभाव ।
नर-गुन औगुन नहिं लखति सज्जन खल सम भाव ।।
डरति सूर सों, भीरु कहँ गनति न कछु रतिहीन ।
बारनारि अरु लच्छमी कहौ कौन बस कीन ? ।।

यद्यपि गुरु ने कहा है कि 'तू झूठी कलह करके कुछ समय तक स्वतंत्र होकर अपना प्रबंध आप कर ले' पर यह तो बड़ा पाप-सा है। अथवा गुरु जी के उपदेश पर चलने से हम लोग तो सदा ही स्वतंत्र हैं !

जब लौं बिगारै काज नहिं तब लौ न गुरु तेहि कहै ।
पै शिष्य जाइ कुराह तो गुरु सीस अंकुस ह्वै रहै ।।

तासों सदा गुरु वाक्य-वस हम नित्य पर-आधीन हैं।
निर्लोभ गुरु से संत जन हो जगत में स्वाधीन हैं॥

( **प्रकाश** ) अजो वैहीनर ! सुगांगप्रासाद का मार्ग दिखाओ।

**कंचुकी**—इधर आइये, महाराज ! इधर।

**राजा**—( **आगे बढ़ता है** )।

**कंचुकी**—महाराज ! सुगांगप्रासाद की यही सीढ़ी है।

**राजा**—( **ऊपर चढ़कर दिशाओं को देखकर** ) अहा ! शरद ऋतु की शोभा से सब दिशाएँ कैसी सुन्दर हो रही हैं !

सरद विमल ऋतु सोहई निरमल नील अकास।
निसानाथ पूरन उदित सोलह कला प्रकास॥
चारु चमेली वन रहीं महमह महकि सुवास।
नदी-तीर फूले लखौ सेत सेत बहु कास॥
कमल कुमोदिनी सरन में फूले सोभा देत।
भौंर वृन्द जापै लखौ गूंजि गूंजि रस लेत॥
वसन चाँदनी, चंद मुख उडुगन मोती माल।
कास फूल मधु हास, यह सरद किधौं नव बाल॥

(**चारों ओर देखकर**) कंचुकी ! यह क्या ? नगर में चंद्रिकोत्सव कहीं नहीं मालूम पड़ता ? क्या तूने सब लोगों से ताकीद करके नहीं कहा था कि उत्सव हो।

**कंचुकी**—महाराज, सबसे ताकीद कर दी थी।

**राजा**—तो फिर क्यों नहीं हुआ ? क्या लोगों ने हमारी आज्ञा नहीं मानी ?

**कंचुकी**—(**कानपर हाथ रखकर**) राम राम ! भला नगर क्या, इस पृथ्वी में ऐसा कौन है जो आपकी आज्ञा न माने ?

**राजा**—तो फिर चन्द्रिकोत्सव क्यों नहीं हुआ ? देख न

गज रथ बाजि सजे नहीं, बँधी न बन्दन वार।
तने वितान न कहुँ नगर, रंजित कहूँ न द्वार॥

काम में लग रहे हैं !' अच्छा-अच्छा ? झटपट सव सिद्ध करो, देखो ! वह महाराज चन्द्रगुप्त आ पहुँचे !

वहु दिन श्रम करि नंद नृप वह्यो राज-धुर जौन ।
वालेपन ही में लियो चंद सीस नित तौन ।।
डिगत न नेकहु विषम पथ, दृढ़ प्रतिज्ञ, दृढ़गात ।
गिरन चहत, सँभरत वहुरि, नेकु न जिय घवरात ।।

( नेपथ्य में ) इधर महाराज ! इधर !

**[ राजा और प्रहरी आते हैं ]**

**राजा**—( **आप ही आप** ) राजा उसी का नाम है जिसमें अपनी आज्ञा चले ! दूसरे के भरोसे राज करना भी एक वोझा ढोना है, क्योंकि—

जो दूजे को हित करे तो खोवै निज काज ।
जो खोयो निज काज तो कौन वात को राज ? ।।
दूजे ही को हित करै तौ वह परवस मूढ़ ।
कठपुतरी सो स्वाद कछु पावै कवहुँ न कूढ़ ।।

और राज्य पाकर भी इस दुष्ट राजलक्ष्मी को सँभालना वहुत कठिन है, क्योंकि

कूर दसा भाखति पियहि, चंचल सहज सुभाव ।
नर-गुन औगुन नहिं लखति सज्जन खल सम भाव ।।
डरति सूर सों, भीरु कहँ गनति न कछु रतिहीन ।
वारनारि अरु लच्छमी कहौ कौन वस कीन ? ।।

यद्यपि गुरु ने कहा है कि 'तू झूठी कलह करके कुछ समय तक स्वतंत्र होकर अपना प्रवंध आप कर ले' पर यह तो वड़ा पाप-सा है । अथवा गुरु जी के उपदेश पर चलने से हम लोग तो सदा ही स्वतंत्र हैं !

जव लौं विगारै काज नहिं तव लौ न गुरु तेहि कहै ।
पै शिष्य जाइ कुराह तो गुरु सीस अंकुस ह्वै रहै ।।

तासों सदा गुरु वाक्य-बस हम नित्य पर-आधीन हैं।
निर्लोभ गुरु से संत जन हो जगत में स्वाधीन हैं॥

( **प्रकाश** ) अजो वैहीनर ! सुगांगप्रासाद का मार्ग दिखाओ।

**कंचुकी**—इधर आइये, महाराज ! इधर।

**राजा**—( **आगे बढ़ता है** )।

**कंचुकी**—महाराज ! सुगांगप्रासाद की यही सीढ़ी है।

**राजा**—( **ऊपर चढ़कर दिशाओं को देखकर** ) अहा ! शरद ऋतु की शोभा से सब दिशाएँ कैसी सुन्दर हो रही हैं !

सरद विमल ऋतु सोहई निरमल नील अकास।
निसानाथ पूरन उदित सोलह कला प्रकास॥
चारु चमेली वन रहीं महमह महकि सुवास।
नदी-तीर फूले लखौ सेत सेत बहु कास॥
कमल कुमोदिनी सरन में फूले सोभा देत।
भौंर वृन्द जापै लखौ गूँजि गूँजि रस लेत॥
वसन चाँदनी, चंद मुख उडुगन मोती माल।
कास फूल मधु हास, यह सरद किधौं नव बाल॥

(**चारों ओर देखकर**) कंचुकी ! यह क्या ? नगर में चंद्रिकोत्सव कहीं नहीं मालूम पड़ता ? क्या तूने सब लोगों से ताकीद करके नहीं कहा था कि उत्सव हो।

**कंचुकी**—महाराज, सबसे ताकीद कर दी थी।

**राजा**—तो फिर क्यों नहीं हुआ ? क्या लोगों ने हमारी आज्ञा नहीं मानी ?

**कंचुकी**—(**कानपर हाथ रखकर**) राम राम ! भला नगर क्या, इस पृथ्वी में ऐसा कौन है जो आपकी आज्ञा न माने ?

**राजा**—तो फिर चन्द्रिकोत्सव क्यों नहीं हुआ ? देख न

गज रथ बाजि सजे नहीं, बँधी न बन्दन वार।
तने वितान न कहुँ नगर, रंजित कहूँ न द्वार॥

नर नारी डोलत न कहुँ फूलमाल गर डार।
नृत्य-वाद धुनि गीत नहिं सुनियत श्रवन मँझार ।।

**कंचुकी**—महाराज ! ठीक है, ऐसा है !

**राजा**—क्यों ऐसा ही है ?

**कंचुकी**—महाराज यों ही है !

**राजा**—स्पष्ट क्यों नहीं कहता ?

**कंचुकी**—महाराज, चन्द्रिकोत्सव वन्द किया गया है।

**राजा**—(क्रोध से) किसने वन्द किया है ?

**कंचुकी**—(हाथ जोड़कर) महाराज ! यह मैं नहीं कह सकता।

**राजा**—कहीं आर्य चाणक्य ने तो नहीं वन्द किया ?

**कंचुकी**—महाराज ! और किसको अपने प्राणों से शत्रुता करनी थी ?

**राजा**—(अत्यन्त क्रोध से) अच्छा, अब हम बैठेंगे।

**कंचुकी**—महाराज ! यह सिंहासन है, विराजिए।

**राजा**—( बैठकर क्रोध से ) अच्छा कंचुकी ! आर्य चाणक्य से कह कि "महाराज आपको देखा चाहते हैं !"

**कंचुकी**—जो आज्ञा ( बाहर जाता है। )

**[ एक ओर परदा उठता है और चाणक्य बैठा हुआ दिखायी पड़ता है। ]**

**चाणक्य**—(आप ही आप) दुष्ट राक्षस हमारी बराबरी करता है। वह जानता है कि—

जिमि हम नृप अपमान सों महा क्रोध उर धारि।
करी प्रतिज्ञा नंद-नृप-नासन की निरधारि ।।
सो नृप नंदहि पुत्र सह नासि करी हम पूर्ण।
चन्द्रगुप्त राजा कियौ करि राक्षस-मद चूर्ण ।।
तिमि सोऊ मोहि नीति बल छलन चहत हति चंद।
पै मो आछत यह जतन वृथा तासु अति मंद ।।

(ऊपर देखकर क्रोध से) अरे राक्षस ! छोड़ छोड़, यह व्यर्थ का श्रम; देख—

जिमि नृप नंदहि मारि कै वृषलहि दीनों राज।
आइ नगर चाणक्य किय दुष्ट सर्प सो काज॥
तिमि सोऊ नृप चंद को चाहत करन बिगार!
निज लघु मति लाँघ्यौ चहत मो वल बुद्धि पहार॥

(आकाश की ओर देखकर) अरे राक्षस ! मेरा पीछा छोड़ क्योंकि—

राजकाज मन्त्री चतुर करत विना अभिमान।
जैसो तुव नृप नंद हो चन्द्र न तौन समान॥
तुम कछु नहि चाणक्य, जो साजौ कठिनहु काज।
तासों हम सों वैर करि नहिं सरिहै तुव राज॥

अथवा इसमें तो मुझे कुछ सोचना ही न चाहिए। क्योंकि—

मम भागुरायन आदि भृत्यन मलय राख्यौ घेरिकै।
तिमि गये सिद्धारथक ऐहैं तेउ काज निवेरिकै॥
अव खलहु करि छल-कलह नृप सों भेद बुद्धि उपाइकै॥
पर्वत जनन सों हम विगारत राक्षसहिं उलटाइकै।

**कंचुकी**—( प्रवेश कर ) हा ! सेवा बड़ी कठिन होती है।

नृप सों, सचिव सों, सब मुसाहेब गनन सों डरते रहौ।
पुनि विटहु जे अति पास के तिनको कह्यो करते रहौ॥
मुख लखत बीतत दिवस निसि, भय रहत संकित प्रान है।
निज उदर-पूरन हेतु सेवा वृत्ति श्वान समान है॥

[ **चारों ओर घूमकर, देखकर** ]

अहा ! यही आर्य चाणक्य का घर है ! तो चलूं ( **कुछ आगे बढ़कर और देखकर**)

अहा हा ! यह राजाधिराज श्री मंत्री जी के घर की संपत्ति है।

कहुँ परे गोमय शुष्क, कहुँ सिल परी सोभा दै रही।

नर नारी डोलत न कहुँ फूलमाल गर डार।
नृत्य-वाद धुनि गीत नहिं सुनियत श्रवन मँझार॥

**कंचुकी**—महाराज ! ठीक है, ऐसा है !

**राजा**—क्यों ऐसा ही है ?

**कंचुकी**—महाराज यों ही है !

**राजा**—स्पष्ट क्यों नहीं कहता ?

**कंचुकी**—महाराज, चन्द्रिकोत्सव वन्द किया गया है।

**राजा**—(**क्रोध से**) किसने वन्द किया है ?

**कंचुकी**—(**हाथ जोड़कर**) महाराज ! यह मैं नहीं कह सकता।

**राजा**—कहीं आर्य चाणक्य ने तो नहीं वन्द किया ?

**कंचुकी**—महाराज ! और किसको अपने प्राणों से शत्रुता करनी थी ?

**राजा**—(**अत्यन्त क्रोध से**) अच्छा, अब हम वैठेंगे।

**कंचुकी**—महाराज ! यह सिंहासन है, विराजिए।

**राजा**—( **बैठकर क्रोध से** ) अच्छा कंचुकी ! आर्य चाणक्य से कह कि "महाराज आपको देखा चाहते हैं !"

**कंचुकी**—जो आज्ञा ( **वाहर जाता है।** )

[ **एक ओर परदा उठता है और चाणक्य बैठा हुआ दिखायी पड़ता है।** ]

**चाणक्य**—(**आप ही आप**) दुष्ट राक्षस हमारी वरावरी करता है। वह जानता है कि—

जिमि हम नृप अपमान सों महा क्रोध उर धारि।
करी प्रतिज्ञा नंद-नृप-नासन की निरधारि॥
सो नृप नंदहि पुत्र सह नासि करी हम पूर्ण।
चन्द्रगुप्त राजा कियो करि राक्षस-मद चूर्ण॥
तिमि सोऊ मोहि नीति वल छलन चहत हति चंद।
पै मो आछत यह जतन वृथा तासु अति मंद॥

(ऊपर देखकर क्रोध से) अरे राक्षस ! छोड़ छोड़, यह व्यर्थ का श्रम; देख—

जिमि नृप नंदहि मारि कै वृषलहि दीनों राज।
आइ नगर चाणक्य किय दुष्ट सर्प सो काज॥
तिमि सोऊ नृप चंद को चाहत करन बिगार!
निज लघु मति लाँघ्यौ चहत मो बल बुद्धि पहार॥

(आकाश की ओर देखकर) अरे राक्षस ! मेरा पीछा छोड़ क्योंकि—

राजकाज मन्त्री चतुर करत बिना अभिमान।
जैसो तुव नृप नंद हो चन्द्र न तौन समान॥
तुम कछु नहि चाणक्य, जो साजौ कठिनहु काज।
तासों हम सों बैर करि नहिं सरिहै तुव राज॥

अथवा इसमें तो मुझे कुछ सोचना ही न चाहिए। क्योंकि—

मम भागुरायन आदि भृत्यन मलय राख्यौ घेरिकै।
तिमि गये सिद्धारथक ऐहैं तेउ काज निवेरिकै॥
अब खलहु करि छल-कलह नृप सों भेद बुद्धि उपाइकै॥
पर्वत जनन सों हम बिगारत राक्षसहिं उलटाइकै।

**कंचुकी**—( प्रवेश कर ) हा ! सेवा बड़ी कठिन होती है।

नृप सों, सचिव सों, सब मुसाहेब गनन सों डरते रहौ।
पुनि विटहु जे अति पास के तिनको कह्यो करते रहौ॥
मुख लखत बीतत दिवस निसि, भय रहत संकित प्रान है।
निज उदर-पूरन हेतु सेवा वृत्ति श्वान समान है॥

[ **चारों ओर घूमकर, देखकर** ]

अहा ! यही आर्य चाणक्य का घर है ! तो चलूं ( **कुछ आगे बढ़कर और देखकर**)

अहा हा ! यह राजाधिराज श्री मंत्री जी के घर की संपत्ति है।

कहुँ परे गोमय शुष्क, कहुँ सिल परी सोभा दै रही।

कहुँ तिल, कहुँ जव-रासि लागीं वटुन जो भिच्छा लही।
कहुँ कुस परे, कहुँ समिधि सूखत भार सों ताके नयो।
यह लखौ छप्पर महा जरजर होइ कैसो झुकि गयो ॥

महाराज चन्द्रगुप्त को वड़े भाग्य से ऐसा मंत्री मिला है—

विना गुनहूँ के नृपन कौ धन हित गुरुजन धाइ।
सूखो मुख करि झूठहों वहु गुन कहहिं वनाइ ॥
पै जिनको तृष्णा नहीं ते न लबार समान।
तिनसों तृन सम धनिक जन पावत कवहुँ न मान ॥

**(देखकर डर से)** अरे आर्य चाणक्य यहाँ वैठे हैं, जिन्होंने—

लोक धरषि चंद्रहि कियो राजा, नंद गिराइ।
होय प्रात रवि के कढ़त जिमि ससि-तेज नसाइ ॥
**(प्रगट दंडवत करके)** जय हो ! आर्य जय हो !!

**चाणक्य**—**(देखकर)** कौन है ? वैहीनर ! क्यों आया है ?

**कंचुकी**—आर्य ! अनेक राजागणों के मुकुट-माणिक्य से सर्वदा जिनके पदतल लाल रहते हैं उन महाराज चंद्रगुप्त ने आपके चरणों में दंडवत करके निवेदन किया है कि यदि आपके किसी कार्य में विघ्न न पड़े तो मैं आपका दर्शन किया चाहता हूँ !

**चाणक्य**—वैहीनर ! क्या वृषल मुझे देखा चाहता है ? क्या मैंने कौमुदी महोत्सव का प्रतिषेध कर दिया है, यह वृषल नहीं जानता ?

**कंचुकी**—आर्य, क्यों नहीं ?

**चाणक्य**—**(क्रोध से)** हूँ ! किसने कहा बोल तो।

**कंचुकी**—( भय से ) महाराज प्रसन्न हों ? जव सुगांगप्रासाद की अटारी पर गये थे तव देखकर महाराज ने आप ही जान लिया कि कौमुदी महोत्सव अवकी नहीं हुआ।

**चाणक्य**—अरे ठहर, मैंने जाना, यह तुम्हीं लोगों ने वृषल का जी मेरी ओर से फेरकर उसे चिढ़ा दिया। और क्या ?

**कंचुकी**—**(भय से सिर नीचा करके चुप रह जाता है।)**

**चाणक्य**—अरे राज के कारबारियों का चाणक्य के ऊपर बड़ा ही विद्वेष पक्षपात है। अच्छा, वृषल कहाँ है, बता!

**कंचुकी**—(डरता हुआ) आर्य सुगांगप्रासाद की अटारी पर से महाराज ने मुझे आपके चरणों में भेजा है।

**चाणक्य**—(उठकर) कंचुकी? सुगांगप्रासाद का मार्ग बता।

**कंचुकी**—इधर महाराज! (**दोनों घूमते हैं।**)

**कंचुकी**—महाराज! यह सुगांगप्रासाद की सीढ़ियाँ हैं। धीरे-धीरे चढ़ें।

**[दोनों सुगांगप्रासाद पर चढ़ते हैं और चाणक्य के घर का परदा गिरकर छिप जाता है।]**

**चाणक्य**—(**चढ़कर और चन्द्रगुप्त को देखकर प्रसन्नता से**) अहा! वृषल सिंहासन पर बैठा है—

हीन नंद सों रहित नृप चंद्र करत जेहि भोग।
परम होत संतोष लखि आसन राजा जोग॥

(**पास जाकर**) जय हो वृषल की!

**चन्द्रगुप्त**—(**उठकर और पैरों पर गिर कर**) आर्य! चन्द्रगुप्त दंडवत करता है।

**चाणक्य**—(**हाथ पकड़ कर उठाकर**) उठो बेटा! उठो!

जहँ लौ हिमालय के सिखर सुरधुनी-कन सीतल रहैं।
जहँ लौं विविध मणि खंड-मंडित समुद्र दच्छिन दिसि बहैं॥
तहँ लौं सबै नृप आइ भय सो तोहि सीस झुकावहीं।
तिनके मुकुट-मणि-रँगे तुव पद निरखि हम सुख पावहीं॥

**चन्द्रगुप्त**—आर्य! आपकी कृपा से ऐसा ही हो रहा है। बैठिए।

**[ दोनों यथास्थान बैठते हैं ]**

**चाणक्य**—वृषल! कहो, मुझे क्यों बुलाया है?

**चन्द्रगुप्त**—आर्य के दर्शन से कृतार्थ होने को!

**चाणक्य**—(**हँसकर**) भया, बहुत शिष्टाचार हुआ! अब बताओ,

क्यों बुलाया है, क्योंकि राजा लोग किसी कर्मचारी को बेकाम नहीं बुलाते।

**चन्द्रगुप्त**—आर्य अपने कौमुदी-महोत्सव के न होने में क्या फल सोचा है?

**चाणक्य**—( हँसकर ) तो यही उलहना देने को बुलाया है, न?

**चन्द्रगुप्त**—उलहना देने को कभी नहीं।

**चाणक्य**—तो क्यों?

**चन्द्रगुप्त**—पूछने को।

**चाणक्य**—जब पूछना ही है तब तुमको इससे क्या? शिष्य को सर्वदा गुरु की रुचि पर चलना चाहिए।

**चन्द्रगुप्त**—इसमें कोई संदेह नहीं, पर आपकी रुचि बिना प्रयोजन नहीं प्रवृत्त होती इससे पूछा।

**चाणक्य**—ठीक है, तुमने मेरा आशय जान लिया। बिना प्रयोजन के चाणक्य की रुचि किसी ओर कभी फिरती ही नहीं।

**चन्द्रगुप्त**—इसी से तो सुने बिना मेरा जी अकुलाता है।

**चाणक्य**—सुनो अर्थशास्त्रकारों ने तीन प्रकार के राज्य लिखे हैं—एक राजा के भरोसे, दूसरा मंत्री के भरोसे, तीसरा राजा और मंत्री दोनों के भरोसे। सो तुम्हारा राज्य तो केवल सचिव के भरोसे है, फिर इन बातों के पूछने से क्या? व्यर्थ मुँह दुखाना है। यह सब हम लोगों के भरोसे है, हम लोग जानें।

[ **राजा क्रोध से मुँह फेर लेता है।** ]

[ **नेपथ्य में दो वैतालिक गाते हैं।** ]

**प्र० वै०**

अहो, यह शरद शंभु ह्वै आई!
काँस-फूल फूले चहुँ दिसि तें सोई मनु भस्म लगाई।
चंद उदित सोइ सीस अभूपन सोभा लगति सुहाई॥
तासों रंजित घन-पटली सोइ मनु गज-खाल बनाई।

फूले कुसुम मुंडमाला सोइ सोहत अति धवलाई ।।
राज हंस सोभा सोइ मानो हास-विभव दरसाई ।
अहो, यह शरद शंभु बनि आई !

**और भी**

हरौ हरि नैन तुम्हारी बाधा ?
सरद-अंत लखि सेस अंक तैं जगे जगत सुभ साधा ।।
कछु कछु खुले, मुंदे कछु सोभित आलसभरि अनियारे ।
अरुन कमल से मद के माते थिर भे जदपि ढरारे ।।
सेस-सीस-मनि-चमक चकौंधन तनकहुँ नहिं सकुचाहीं ।
नींद-भरे श्रम जगे चुभत जे नित कमल-उर माहीं ।।
हरौ हरि नैन तुम्हारी बाधा ।

**दूसरा वै०**—(**कड़खे की चाल में**)

अहो, जिनकौं विधि सब जीव सों बढ़ि दीनों जग काज ।
अरे, दान-सलिल-वारे सदा जे जीतहिं गजराज ।।
अहो, झुक्यो न जिनको मान ते नृपवर जग सिरताज ।
अरे, सहहिं न आज्ञा-भंग जिमि दंतपात मृगराज ।।
अरे, केवल वहु गहना पहिरि राजा होय न कोय ।
अहो, जाकी नहिं अज्ञा टरे सो नृप तुम सम होय ।।

**चाणक्य**—(**सुनकर आप ही आप**) भला पहले ने तो देवता-रूप शरद के वर्णन में आशीर्वाद दिया, पर इस दूसरे ने क्या कहा ? (**कुछ सोचकर**) अरे जाना, यह सब राक्षस की करतूत है। अरे दुष्ट राक्षस ! क्या तू नहीं जानता कि अभी चाणक्य सो नहीं गया है।

**चन्द्रगुप्त**—अजी वैहीनर ! इन दोनों गाने वालों को लाख-लाख मोहर दिलवा दो !

**वैहीनर**—जो आज्ञा, महाराज । (**उठकर जाना चाहता है ।**)

**चाणक्य**—(**क्रोध से**) वैहीनर ठहर, अभी मत जा । वृषल ! कुपात्र को इतना क्यों देते हो ?



...UTE OF ADVANCED...
Acc. No. 39648
18/5/68
Date

**चन्द्रगुप्त**—आप मुझे सब बातों में योंही रोक दिया करते हैं, तब यह मेरा राज क्या है उलटा बन्धन है।

**चाणक्य**—वृषल ! जो राजा आप असमर्थ होते हैं उनमें इतना ही तो दोष है। इससे जो ऐसी इच्छा हो तो तुम अपने राज का प्रवन्ध आप कर लो।

**चन्द्रगुप्त**—बहुत अच्छा; आज से मैंने सब काम सँभाला।

**चाणक्य**—इससे अच्छी और क्या बात है ? तो मैं भी अपने अधिकार पर सावधान हूँ।

**चन्द्रगुप्त**—जब यही है तब पहले मैं पूछता हूँ कि—कौमुदी महोत्सव का निषेध क्यों किया गया ?

**चाणक्य**—वृषल ! मैं भी यही पूछता हूँ कि उसके होने का प्रयोजन क्या था ?

**चन्द्रगुप्त**—पहले तो मेरी आज्ञा का पालन।

**चाणक्य**—पहला प्रयोजन यह है कि मैंने आपकी आज्ञा के अपालन के हेतु ही कौमुदी-महोत्सव का प्रतिषेध किया। क्योंकि—

आइ चारहूँ सिंधु से छोरहु के भूपाल।
जो सासत सिर पैं धरैं जिमि फूलन की माल॥
तेहि हम जो कछु टारहीं सोउ तुव हित उपदेश।
जासों तुमरों विनय गुन जग में बढ़ै नरेश !॥

**चन्द्रगुप्त**—और जो दूसरा प्रयोजन है, वह भी सुनूं।

**चाणक्य**—वह भी कहता हूँ।

**चन्द्रगुप्त**—कहिए।

**चाणक्य**—शोणोत्तरे ! अचलदत्त कायस्थ से कहो कि तुम्हारे पास जो भद्रभट इत्यादि का लेख-पत्र है, वह माँगा है।

**प्रति०**—जो आज्ञा ( **बाहर से पत्र लाकर देता है।** )

**चाणक्य**—वृषल ! सुनो।

**चन्द्रगुप्त**—मैं उधर ही कान लगाए हूँ।

**चाणक्य**—(पढ़ता है) स्वस्ति परम प्रसिद्ध नाम महाराज भी चन्द्रगुप्त देव के साथी जो अब उनको छोड़कर कुमार मलयकेतु के आश्रित हुए उनका यह प्रमाण-पत्र है। पहला गजाध्यक्ष भद्रभट, अश्वाध्यक्ष पुरुषदत्त, महाप्रतिहार चन्द्रभानु का भांजा हिंगुराज, महाराज के नातेदार महाराज बालगुप्त, महाराज के लड़कपन का सेवक राजसेन, सेनापति सिंह बलदत्त का छोटा भाई भागुरायण, मालव के राजा का पुत्र रोहिताक्ष और क्षत्रियों में सबसे प्रधान विजय-वर्मा (**आप ही आप**) ये सब लोग महाराज का काम सावधानी से साधते हैं (**प्रकाश**) यही इस पत्र में लिखा है। सुना ?

**चन्द्रगुप्त**—आर्य ! मैं इन सबों के उदास होने का कारण सुनना चाहता हूँ।

**चाणक्य**—वृषल ! सुनो वे जो गजाध्यक्ष और अश्वाध्यक्ष थे वे रात-दिन मद्य, स्त्री और जुए में डूबकर अपने काम में निरे बेसुध रहते थे, इससे मैंने उनसे अधिकार लेकर केवल निर्वाह के योग्य उनकी जीविका कर दी थी। इससे उदास होकर वे कुमार मलयकेतु के पास चले गये और वहाँ अपना कार्य सुनाकर फिर उन्हीं पदों पर नियुक्त हुए है। हिंगुराज और बालगुप्त ऐसे लालची हैं कि कितना भी दिया परन्तु मारे लालच के कुमार मलयकेतु के पास इस लोभ से जा रहे कि वहाँ बहुत मिलेगा। राजसेन, जो आपका लड़कपन का सेवक था उसने आपकी थोड़ी ही कृपा से हाथी, घोड़ा, घर और धन सब पाया। इस पर भय से भाग कर मलयकेतु के पास चला गया कि यह सब छिन न जाय। वह जो सिंहबलदत्त सेनापति का छोटा भाई, भागुरायण है उससे पर्वतक से बड़ी प्रीत थी सो उसने कुमार मलयकेतु से यह कहा कि "जैसे विश्वासघात करके चाणक्य ने तुम्हारे पिता को मार डाला वैसे ही तुम्हें भी मार डालेगा इससे यहाँ से भाग चलो।" ऐसे ही बहकाकर उसने कुमार मलयकेतु को भगा दिया और जब आपके बैरी चंदनदासादिक को दंड हुआ तब

मारे डर के मलयकेतु के पास जा रहा। उसने भी यह समझकर कि इसने मेरे प्राण वचाये हैं और मेरे पिता का परिचित भी है उसको कृतज्ञता से अपना अंतरंग मंत्री वनाया है। वे जो रोहिताक्ष और विजयवर्मा थे वे ऐसे अभिमानी थे, जव आप उनके नातेदारों का आदर करते थे तव वे कुढ़ते थे इसी से वे भी मलयकेतु के पास चले गये। वस यही उन लोगों की उदासी का कारण है।

**चन्द्रगुप्त**—आर्य जव इन सवके भागने का उद्यम जानते ही थे तो क्यों न रोक रखा ?

**चाणक्य**—ऐसा कर नहीं सके।

**चन्द्रगुप्त**—क्या असमर्थ हो गए या उसमें भी कुछ प्रयोजन था ?

**चाणक्य**—असमर्थ कैसे हो सकते हैं ? उसमें भी कुछ प्रयोजन ही था।

**चन्द्रगुप्त**—आर्य ! वह प्रयोजन में सुना चाहता हूँ।

**चाणक्य**—सुनो और भूल मत जाओ।

**चन्द्रगुप्त**—आर्य ! मैं सुनता हुई हूँ, भूलूंगा भी नहीं। कहिये।

**चाणक्य**—अव जो लोग उदास हो गए हैं या विगड़ गए हैं उनके दो ही उपाय हैं—या तो फिर से उन पर अनुग्रह करें या उनको दंड दें। भद्रपद और पुरुषदत्त से जो अधिकार ले लिया गया है तो अव उन पर अनुग्रह यही है कि फिर उनको उनका अधिकार दिया जाय। पर यह हो नहीं सकता क्योंकि उनको मृगया मद्यपानादिक का जो व्यसन है उससे वे इस योग्य नहीं हैं कि हाथी-घोड़ों को संभालें और सव सेना की जड़ हाथी-घोड़े ही हैं। वैसे ही हिंगुराज और वालगुप्त को कौन प्रसन्न कर सकता है ? क्योंकि उनको सव राज्य पाने से भी संतोष न होगा। राजसेन और भागुरायण तो धन और प्राण के डर से भागे हैं, वे तो प्रसन्न होई नहीं सकते। रोहिताक्ष तथा विजयवर्मा का तो कुछ पूछना ही नहीं है, क्योंकि वे तो और नातेदारों के मान से जलते हैं। उनका कितना

भी मान करो, उन्हें थोड़ा ही दिखलाता है। तो इसका क्या उपाय है? यह तो अनुग्रह का वर्णन हुआ। अब दंड का सुनिये। यदि हम प्रधान पद पाकर इन सबों को जो बहुत दिनों से नंदकुल के सर्वदा शुभाकांक्षी और साथी रहे दंड देकर दुखी करें तो नंदकुल के साथियों का हम पर से विश्वास उठ जाय। इससे हमने इन्हें छोड़ ही देना योग्य समझा। सो इन्हीं सब हमारे भृत्यों को पक्षपाती बनाकर राक्षस के उपदेश से म्लेच्छराज की बड़ी सहायता पाकर और अपने पिता के बध से क्रोधित होकर पर्वतक का पुत्र कुमार मलयकेतु हम लोगों से लड़ने को उद्यत हो रहा है। सो यह लड़ाई के उद्योग का समय है, उत्सव का समय नहीं। इससे गढ़ के संस्कार के समय कौमुदी महोत्सव क्या होगा? यही सोचकर उसका प्रतिषेध कर दिया।

**चन्द्रगुप्त**—आर्य! मुझे अभी इसमें बहुत कुछ पूछना है।

**चाणक्य**—भली भाँति पूछो, क्योंकि मुझे भी बहुत कुछ कहना है।

**चन्द्रगुप्त**—यह पूछता हूँ।

**चाणक्य**—हाँ! मैं भी कहता हूँ।

**चन्द्रगुप्त**—कि हम लोगों के सब अनर्थों की जड़ मलयकेतु है। उसे भागते समय क्यों नहीं पकड़ा?

**चाणक्य**—वृषल! मलयकेतु के भागने के समय भी दो ही उपाय थे—या तो मेल करते या दंड देते। जो मेल करते तो आधा राज देना पड़ता और जो दंड देते तो फिर यह लोगों की कृतघ्नता सब पर प्रसिद्ध हो जाती कि इन्हीं लोगों ने पर्वतक को भी मरवा डाला। आधा राज देकर जो अब मेल कर लें तो उस बेचारे पर्वतक के मारने का केवल पाप ही हाथ लगे इससे मलयकेतु को भागते समय छोड़ दिया।

**चन्द्रगुप्त**—और भला राक्षस इसी नगर में रहता था उसका भी आपने कुछ न किया। इसका क्या उत्तर है?

**चाणक्य**—सुनो, राक्षस अपने स्वामी की स्थिर भक्ति से और यहाँ बहुत दिन रहने से यहाँ के लोगों का और नंद के सब साथियों का विश्वासपात्र हो रहा है और उसका स्वभाव सब लोग जान गए हैं। उसमें बुद्धि और पौरुष भी है वैसे ही उसके सहायक भी हैं और उसे कोषबल भी है। इससे जो वह यहाँ रहे तो भीतर के सब लोगों को फोड़कर उपद्रव करे और जो यहाँ से दूर रहे तो वह ऊपरी जोड़-तोड़ लगावे, पर उनके मिटाने में इतनी कठिनाई न हो, इससे उसके जाने के समय उपेक्षा कर दी गई।

**चन्द्रगुप्त**—तो जब वह यहाँ था तभी उसको वश में क्यों नहीं कर लिया?

**चाणक्य**—वश में क्या कर लें? अनेक उपायों से तो वह छाती में गड़े काँटे की भाँति निकाल कर दूर किया गया है। उसे दूर करने में और कुछ प्रयोजन ही था।

**चन्द्रगुप्त**—तो बल से क्यों नहीं पकड़ रखा?

**चाणक्य**—वह राक्षस ही है, उस पर जो बल किया जाता तो वह आप मारा जाता या तुम्हारी सेना का नाश कर देता! दोनों ही प्रकार हानि थी, देखो—

हम खोवैं इक महत नर, जो वह पावै नास।
जो वह नासै सैन तुव, तौहूँ जिय अति त्रास॥
तासों कल बल करि बहुत अपने बस करि वाहि।
जिमि गज पअरैं सुघर तिमि बाँधैंगे हम ताहि॥

**चन्द्रगुप्त**—मैं आपकी बात तो नहीं काट सकता, पर इससे तो मंत्री राक्षस ही बढ़-चढ़ के जान पड़ता है।

**चाणक्य**—(क्रोध से) 'आप नहीं' इतना क्यों छोड़ दिया? ऐसा कभी नहीं है, उसने क्या किया है, कहो तो?

**चन्द्रगुप्त**—जी आप न जानते हों तो सुनिए कि वह महात्मा—

जदपि आपु जीती पुरी तदपि धारि कुसलात।
जब लौं जिय चाह्यौ रह्यौ धारि सीस पै लात॥

डौंडी फेरन के समय निज बल जय प्रगटाय !
मेरे बल के लोग कों दीनों तुरत हराय ॥
मोहे परिजन रीति सों जोके सब बिनु त्रास ।
पै मोपैं निज लोकहू आनहिं नहिं बिस्वास ॥

**चाणक्य**—(हँसकर) वृषल ! राक्षस ने यह सब क्या किया ?

**चन्द्रगुप्त**—हाँ ! हाँ ! अमात्य राक्षस ने यह सब किया ।

**चाणक्य**—तो हमने जाना कि जिस तरह नंद का नाश करके तुम राजा हुए, वैसे ही अब मलयकेतु राजा होगा ।

**चन्द्रगुप्त**—आर्य यह उपालंभ आपको नहीं शोभा देता । करने वाला सब दूसरा है ।

**चाणक्य**—रे कृतघ्न—

अतिहि क्रोध करि खोलिकै सिखा प्रतिज्ञा कीन ।
सो सब देखत भुव करी नव-नृप-नंद-बिहीन ॥
घिरि स्वान अरु गीध सों भय-उपजावनि हारि ।
जारि नंदहू नहिं भई सांत मसान-देवारि ॥

**चन्द्रगुप्त**—यह सब किसी दूसरे ने किया ।

**चाणक्य**—किसने ?

**चन्द्रगुप्त**—नंदकुल के द्वेषी दैव ने ।

**चाणक्य**—दैव तो मूर्ख लोग मानते हैं ।

**चन्द्रगुप्त**—और विद्वान लोग भी यद्वा तद्वा करते हैं ।

**चाणक्य**—(**क्रोध नाट्य करके**) अरे वृषल ! क्या नौकर की तरह मुझ पर आज्ञा चलाता है ।

बँधी सिखाहु खोलिबे चंचल भे पुनि हाथ ।
( **क्रोध से पृथ्वी पर पैर पटककर** )
घोर प्रतिज्ञा पुनि चरन करन चहत कर साथ ॥
नंद नसे सों निरुज ह्वै तू फूल्यौ गरबाय ॥
सो अभिमान मिटायहौं तुरतहि तोहिं गिराय ॥

**चन्द्रगुप्त**—( **घबड़ाकर आप-ही-आप** ) अरे ? क्या आर्य को सचमुच क्रोध आ गया ?

फर फर फरकत अधर-पुट भये नयन जुग लाल।
चढ़ी जात भौंहैं कुटिल, स्वास तजत जिमि व्याल ॥
मनहुँ अचानक रुद्र-दृग खुल्यौ त्रितिय दिखरात।

( **आवेग सहित** )

धरनी धार्या विनु धंसे हा किमि पद-घात ॥

**चाणक्य**—( **नकली क्रोध रोककर** ) तो वृषल ! इसी कोरी बकवाद से क्या लाभ ? जो राक्षस चतुर है तो यह शस्त्र उसी को दे। (**शस्त्र फेंक कर और उठकर ऊपर देखते हुए आप-ही-आप**) ह ह ह ! राक्षस ! यही तुमने चाणक्य को जीतने का उपाय किया।

तुम जान्यो चाणक्य सों नृप चंदहि लरवाय।
सहजहिं लैहै राज हम निज बल बुद्धि उपाय ॥
सो हम तुमहीं कहँ छलन कियो क्रोध परकास।
तुमरोई करिहै उलटि यह तुव भेद बिनास ॥

[ **क्रोध प्रकट करता हुआ चला जाता है।** ]

**चन्द्रगुप्त**—आर्य वैहीनर ! "चाणक्य का अनादर करके आज से चंद्रगुप्त सब काम-काज आप ही सँभालेंगे", यह लोगों से कह दो।

**कंचुकी**—( **आप ही आप** ) अरे आज महाराज ने चाणक्य के पहले 'आर्य' शब्द नहीं कहा ! क्यों ? क्या सचमुच अधिकार छीन लिया ? वा इसमें महाराज का क्या दोष है ?

सचिव-दोष सों होत हैं, नृपहु बुरे ततकाल।
हाथीवान प्रमाद सों गज कहवावत व्याल ॥

**चन्द्रगुप्त**—क्यों जी ? क्या सोच रहे हो ?

**कंचुकी**—यही कि महाराज को 'महाराज' शब्द अब यथार्थ शोभा देता है।

**चन्द्रगुप्त**—( **आप ही आप** ) इन्हीं लोगों के धोखा खाने से आर्य का काम होगा। ( **प्रकट** ) शोणोत्तरे ! इस सूखी कलह से हमारा सिर दुखने लगा, इससे शयनगृह का मार्ग दिखलाओ।

**प्रतिहार**—इधर आवें महाराज, इधर आवें।

**चन्द्रगुप्त**—( **उठकर चलता हुआ आप ही आप** )

गुरु-आयसु छल सों कलह करिहु जीय डराय।
किमि नर गुरुजन सों लरहिं यहै सोच जिय, हाय ॥

[ **सब जाते हैं—यवनिका गिरती है।** ]

**उपर्युक्त अंक में जो संघर्ष है वह केवल 'छल-कलह' का अभिनय मात्र है। जब स्वयं चन्द्रगुप्त का यह कथन है कि "गुरु नें कहा है कि तू झूठी कलह करके कुछ समय तक स्वतंत्र होकर अपना प्रबन्ध आप कर ले" और चाणक्य ने भी यह कहा कि—**

**अब लखहु करि छल-कलह नृप सों भेद बुद्धि उपाइ कै,**
**पर्वत जनन सों हम बिगारत राक्षसहिं उलटाइ कै।"**

तब इस संघर्ष का क्या महत्व रह जाता है ? दोनों ही पात्र जानते हैं कि यह झूठी लड़ाई है तो जो मन में आये, कहा जा सकता है। चन्द्रगुप्त जैसे धीरोदात्त नायक की दशा उस समय तो और भी दयनीय हो जाती है जब वह घबड़ा कर आप-ही-आप कहता है—'अरे, क्या आर्य को सचमुच क्रोध आ गया ?' और अंक के अंत में वह कहता है कि 'इन्हीं लोगों के धोखा खाने से आर्य का काम होगा।' यह समस्त संभाषण और उससे उत्पन्न संघर्ष केवल कूटनीति का एक अंग है जिसमें चन्द्रगुप्त के मनोविज्ञान के लिये कोई स्थान नहीं रह जाता। वह पूर्ण रूप से चाणक्य के इशारे पर चल रहा है और 'कौमुदी महोत्सव' एक घटना मात्र है जिससे चाणक्य चन्द्रगुप्त को अपनी नीति का साधन मात्र बनाकर एक भ्रम उत्पन्न करना चाहता है जैसे हम नाटक में आत्म-हत्या करते हैं और रक्त का एक बूंद भी हमारे शरीर में से नहीं निकलता। मुद्राराक्षस में चाणक्य की नीति ही प्रधान है जिसके प्रभाव से नाटक के समस्त पात्र

ग्रौर समस्त घटनायें सौर-मंडल के ग्रहों ग्रौर उपग्रहों की भाँति सूर्य रूपी चाणक्य के चारों ग्रोर घूमती हैं। नाटककार की दृष्टि में संघर्ष तो राक्षस ग्रौर मलयकेतु में है। चन्द्रगुप्त जो चाणक्य के ही पक्ष का है, संघर्ष का भोक्ता कैसे हो सकता है? इस संबंध में श्री ब्रजरत्नदास जी ने मुद्राराक्षस की भूमिका में लिखा है[1]—

'घटनाग्रों के वर्णन में यह विशेषता भी है कि सब बातें ठीक वैसी ही होती थीं जैसा कि चाणक्य चाहता था। कहीं भी उसकी इच्छा के विपरीत कोई घटना नहीं हुई। ऐसा जान पड़ता है कि चाणक्य घटनाग्रों का ग्रनुशासन उसी प्रकार करता था जैसे काठ की पुतली नचाने वाला सूत्रों को हाथ में पकड़ कर इच्छानुकूल उनसे कार्य कराता है। इस ग्रवस्था में या तो हम चाणक्य की बहुज्ञता ग्रौर दूरदर्शिता का परिचय पाते हैं ग्रथवा कवि पर ग्रस्वाभाविकता का दोष लगा सकते हैं। कभी-कभी ग्रनुकूल घटनायें ठीक समय पर हो जाती हैं, पर ग्रादि से ग्रंत तक चाणक्य द्वारा प्रेरित सब घटनाग्रों का सरोतर उतारना नाटक के नाट्यत्व में बाधक होता है।"

ऐसी स्थिति में चन्द्रगुप्त के मनोविज्ञान ग्रौर संघर्ष की ग्राशा करना दुराशा मात्र है। ग्रब स्वर्गीय श्री द्विजेन्द्रलाल राय लिखित चन्द्रगुप्त नाटक लीजिये। यह हिन्दी ग्रनुवाद पं० रूपनारायण पाण्डेय कृत है। उसमें 'कौमुदी महोत्सव' का प्रसंग चतुर्थ ग्रंक के द्वितीय दृश्य में है—

**स्थान—पाटलिपुत्र का राजमहल**

समय : रात्रि

[ **मुरा ग्रौर चन्द्रकेतु** ]

**मुरा**—चन्द्रकेतु ! ग्राज चन्द्रगुप्त दाक्षिणात्य जय करके मगध को लौटा ग्रा रहा है। नगर में उत्सव क्यों नहीं मनाया जा रहा है?"

**चन्द्रकेतु**—मंत्री चाणक्य ने निषेध कर दिया है।

---

**१ मुद्राराक्षस (संपादक—ब्रजरत्नदास), पृष्ठ २०**

**मुरा**—यह कैसे ? गुरुदेव ने अपने प्रिय शिष्य की विजय पर उत्सव-निषेध कर दिया है ? यह उसका कैसा विचार ?

**चन्द्रकेतु**—माँ, मंत्रीवर ने जो निषेध किया है, उसका अवश्य ही कुछ न कुछ कारण होगा।

**मुरा**—कारण कुछ नहीं। जान पड़ता है कि चन्द्रगुप्त के विजय-गौरव पर ब्राह्मण के हृदय में ईर्ष्या उत्पन्न हुई है।

**चन्द्रकेतु**—उस विजय-गौरव की सूचना किसने दी थी, माँ ? ब्राह्मण के प्रति अविचार नहीं करना चाहिए।

**मुरा**—यह देखो बाजे का शब्द सुनायी दे रहा है। बेटा लौटा आ रहा है। मैं जाती हूँ, महल के शिखर पर खड़ी होकर प्रवेश-समारोह देखूंगी— [ **जल्दी से चली जाती है।** ]

**चन्द्रकेतु**—आज बहुत दिनों के बाद भाई का जय की दीप्ति से दमकता हुआ मुख देखने को मिलेगा। आज मुझे कितना आनन्द है ! चन्द्रगुप्त, तुम क्या पूर्व जन्म में मेरे भाई ही थे ?

( **नेपथ्य में कोलाहल और बाजे पर गाने की ध्वनि** )

[ **धीरे-धीरे 'महाराज चन्द्रगुप्त की जय' की ध्वनि अधिकाधिक होने लगी और क्रम से निकटवर्ती होने लगी। तदनन्तर पताकाधारी लोगों और सैनिकगणों के सहित चन्द्रगुप्त ने प्रवेश किया।** ]

**चन्द्रकेतु**—आओ बन्धु ! ( **आलिंगन करने को उद्यत होता है** )

**चन्द्रगुप्त**—( **रूखे भाव से** ) चन्द्रकेतु ! तुम्हें हमारी आज्ञा मिली थी ?

**चन्द्रकेतु**—कौन सी आज्ञा प्रियवर !

**चन्द्रगुप्त**—मेरे आगमन के उपलक्ष्य में नगर में रोशनी की जावे, यह आज्ञा पायी थी ?

**चन्द्रकेतु**—हाँ, पायी थी।

**चन्द्रगुप्त**—फिर उस आज्ञा का पालन नहीं किया गया ?

**चन्द्रकेतु**—मंत्री ने निषेध कर दिया था।

**चन्द्रगुप्त**—यह तो मैंने पहले ही अनुमान कर लिया था। चन्द्रगुप्त मगध का महाराज मैं हूँ या चाणक्य ?

**चन्द्रकेतु**—सुनो भाई—

**चन्द्रगुप्त**—उत्तर दो, मगध का महाराज मैं हूँ या मेरा मंत्री !

**चन्द्रकेतु**—मगध के महाराज चन्द्रगुप्त हैं।

**चन्द्रगुप्त**—तव ?

**चन्द्रकेतु**—प्रियवर—

**चन्द्रगुप्त**—मैं नहीं सुनना चाहता, मंत्री को वुलाओ।

**चन्द्रकेतु**—सुनो भाई ! इसका एक विशेप कारण—

**चन्द्रगुप्त**—मैं नहीं सुनना चाहता। मैं इसी समय उसका जवाव-तलव करूँगा।

**चन्द्रकेतु**—उन्होंने कहा—

**चन्द्रगुप्त**—उन्होंने जो कुछ कहा था वह वे स्वयं आकर कह लेंगे। आज इसी समत निश्चित हो जाना चाहिए कि मगध के महाराजा चन्द्रगुप्त हैं या चाणक्य !

**चन्द्रकेतु**—अधीर न होओ, सुनो।

**चन्द्रगुप्त**—चन्द्रकेतु, तुम भी मेरा कहना नहीं मानते हो, जाओ।

( **चन्द्रकेतु का धीरे-धीरे प्रस्थान** )

**चन्द्रगुप्त**—ब्राह्मण का दम्भ मेरा धीरज छुड़ाये देता है।

एक वार—नहीं पहले—स्पर्धा !—आश्चर्य !

इस वार मैं—नहीं—पहले जवाव-तलव करूँगा! ( **घूमता है** )

[ **चाणक्य और चन्द्रकेतु का प्रवेश।** ]

**चाणक्य**—महाराज की जय हो।

**चन्द्रगुप्त**—( **रूखे भाव से प्रणाम करके** ) मंत्रिवर ! मैंने आज अपने नगर-प्रवेश के उपलक्ष्य में नगर में रोशनी करने की आज्ञा दी थ । उस आज्ञा का पालन नहीं किया गया ?

**चाणक्य**—मैंने निषेध कर दिया था।

**चन्द्रगुप्त**—( थोड़ी देर तक स्तब्ध होकर ) क्या मैं इसका कारण जान सकता हूँ ?

**चाणक्य**—कुछ प्रयोजन नहीं है ।

**चन्द्रगुप्त**—प्रयोजन नहीं है !

**चाणक्य**—मैंने जो किया है समझ-बूझ कर ही किया है ।

**चन्द्रगुप्त**—तो भी मैं कारण जानना चाहता हूँ ।

**चाणक्य**—कारण जानने का समय अभी नहीं आया है । जब आयेगा तब बता दूँगा ।

**( चाणक्य मुसकराते हुए देखते रहते हैं । )**

**चन्द्रगुप्त**—मंत्री, मैं इस उद्धतता को सहन नहीं कर सकता । मैं इसका न्याय-विचार करूँगा ।

**चाणक्य**—चन्द्रगुप्त ! तुम उत्तेजित हो गए हो । जरा शांत होओ ।

[ **प्रस्थानोद्यत** ]

**चन्द्रगुप्त**—मंत्री !

**चाणक्य**—( लौटकर ) वत्स !

**चन्द्रगुप्त**—मैं जानना चाहता हूँ कि इस राज्य का स्वामी मैं हूँ या चाणक्य ।

**चाणक्य**—महाराज चन्द्रगुप्त ।

**चन्द्रगुप्त**—यह तो मैं नहीं देख रहा हूँ । देखता तो यह हूँ कि अपने ही साम्राज्य में वन्दी हूँ, अपने ही घर में मैं दास हूँ । मंत्री चाणक्य पाटलिपुत्र में निश्चित बैठकर राज भोग करें और महाराज चन्द्रगुप्त देश-देशान्तर से आहरण करके ला दिया करें । भारतवर्ष मंत्री चाणक्य के गुणों का गीत गाया करे और उस गीत के उपादान जुटाया करें महाराज चन्द्रगुप्त ! महाराज चन्द्रगुप्त मंत्री चाणक्य की आज्ञा को सिर झुकाकर माना करें और चाणक्य चन्द्रगुप्त की आज्ञा को लात से रौंदा

करें। यदि मेरे और तुम्हारे बीच में यही संबंध है, तो जितनी जल्दी यह बन्धन छिन्न हो जाय, उतना ही अच्छा।

**चाणक्य**—महाराज की अभिरुचि। चाणक्य ने यह मंत्रित्व माँग कर नहीं लिया है। मैं इसी समय अपना पदत्याग करता हूँ।

**चन्द्रगुप्त**—परन्तु उसके पहले मैं इसकी कैफ़ियत चाहता हूँ।

**चाणक्य**—मैं कैफ़ियत नहीं दूँगा।

**चन्द्रगुप्त**—इतना साहस! सैनिको! वन्दी करो!

[ **सैनिक स्थिर भाव से खड़े रहते हैं।** ]

**चन्द्रगुप्त**—सैनिको! (**सैनिकों के आगे वढ़ने पर चाणक्य वड़े ही शांत भाव से हाथ के संकेत से उन्हें रोक देते हैं।**)

**चाणक्य**—शूद्र की इतनी मजाल अव भी नहीं हुई है।—महाराज! यह लो मैंने आपका मंत्रित्व त्याग दिया। [ **मंत्री की पोशाक वगैरह उतार कर रख देते हैं।** ]—महाराज, चाणक्य निश्चित होकर राजधानी में विलास नहीं करता है। वह यहाँ वैठा हुआ एक वड़े भारी साम्राज्य को चला रहा है। और रहा चाणक्य का राजभोग!—सो वह आहार करता है दो मुट्ठी उवाले हुए चावल और सोता है मृगछाला की शय्या पर। वह रात के तीसरे पहर कुटीर के आँगन में उष्ण मस्तिष्क से राज्य की चिन्ता करता हुआ टहलता है। मैं जाता हूँ।—तुम्हारा राज्य है, तुम्हीं उसका शासन करो। (**जाने को तैयार होता है; सहसा लौटकर**) हाँ, जाने के पहले मैं यह कहे जाता हूँ कि क्यों मैंने आज उत्सव नहीं होने दिया। भूतपूर्व महाराज नंद के मंत्री ने विद्रोह-मंत्रणा को गर्मी देकर एक वड़ा भारी षड़यंत्र तैयार किया है। आज रात्रि में उत्सव के समय उसके दल के लोगों ने नगर पर आक्रमण करने का इरादा किया था। वे लोग तुम्हारे सोने के कमरे में सुरंग काटकर तुम्हारी हत्या करने के लिये वहाँ तुम्हारा मार्ग देख रहे हैं। मैंने उन लोगों का वध करने

के लिये सैनिकों को भेज दिया है। ( **प्रस्थानोद्यत, फिर लौट-कर** ) हाँ, और भी एक बात है। विजयी सेल्यूकस सिन्धुनद के पार उतर आया है। इस तरह शत्रु चारों ओर से सशस्त्र हो रहे हैं। यह उत्सव का समय नहीं है। इसीलिये मैंने उत्सव बन्द कर दिया था।

( **प्रस्थानोद्यत** )

**चन्द्रकेतु**—( **चाणक्य के पैरों पर गिरकर** ) गुरुदेव ! क्षमा कीजिये।

**चाणक्य**—कैफ़ियत दे चुकने पर चाणक्य मंत्रित्व ग्रहण नहीं करेगा।

[ **प्रस्थान** ]

**चन्द्रकेतु**—बन्धुवर ? मंत्री महाशय को अनुनय करके लौटा लो।

**चन्द्रगुप्त**—क्यों, जहाँ चाणक्य नहीं है, वहाँ क्या राज्य नहीं चलते हैं ? इतना अहङ्कार ! बुरा क्या हुआ ? आज मैं मुक्त हूँ। आज मैं सचमुच महाराज हूँ।

**चन्द्रकेतु**—भाई, उपदेश सुनो। उनको पकड़ कर ले आओ।

**चन्द्रगुप्त**—चन्द्रकेतु, मैं तुम्हारा उपदेश नहीं चाहता। तुम्हारे अनुरोध से मैंने चाणक्य को एक बार क्षमा कर दिया था !—पर वह मैंने ग़लती की थी। ब्राह्मण की मजाल तो देखो ! मैं महाराज हूँ, फिर भी मेरी कोई शक्ति नहीं है ! भाई को क्षमा करने की मुझमें क्षमता नहीं है। मानो राज्य का मैं कोई भी नहीं हूँ।—केवल एक महाराज का अभिनय कर रहा हूँ। इस व्यंग-अभिनय से तो सीधी-सादी गुलामी अच्छी।

**चन्द्रकेतु**—गुरुदेव जो कुछ करते हैं वह तुम्हारी भलाई के लिए।

**चन्द्रगुप्त**—इसी भलाई के लिए ही क्या ब्राह्मण ने मेरे भाई नंद की हत्या की थी ? उन्होंने और कात्यायन ने मेरे नंद को हत्या करके पैशाचिक उल्लास से उसके मृत शरीर के ऊपर ताण्डव नृत्य किया था। क्या मैंने वह देखा नहीं था !

**चन्द्रकेतु**—किन्तु इस सिंहासन के लिए तुम उनके ऋणी हो।

**चन्द्रगुप्त**—आर्य्य !—जाओ, तुम अप्रिय वाक्य कहने में खूब दक्ष हो, यह मैं जानता हूँ।

**चन्द्रकेतु**—अप्रिय सत्य बोलने का अधिकार एक बन्धु को ही होता है।

**चन्द्रगुप्त**—पर वह बन्धुत्व होता है बराबर वालों में।

**चन्द्रकेतु**—(**थोड़ी देर चुप रह कर**) महाराज! मेरी उद्धतता को क्षमा कीजिये। भविष्य में महाराज के साथ बन्धुत्व की स्पर्धा नहीं करूँगा। अच्छा तो अब मैं विदा होता हूँ—पर जाने के पहले एक बात कहे जाता हूँ कि सम्पत्ति काल में महाराज मेरे बन्धुत्व की उपेक्षा करते हैं तो करें; किन्तु विपत्ति में उस अधिकार से मुझे वंचित न रखियेगा। यदि मेरी सहायता का महाराज को कभी कोई प्रयोजन आ पड़े तो आज की बातों से लज्जा के कारण मुझे बुलाने में दुविधा मत कीजियेगा। मेरे जीवन से यदि महाराज का कोई साधारण भी लाभ हो तो यह जीवन मैं हँसते-हँसते महाराज के लिए सदा के लिए दे देने को प्रस्तुत हूँ।

[ **प्रस्थान** ]

[**चन्द्रगुप्त थोड़ी देर तक चुप खड़े रहते हैं। पाँच सशस्त्र सैनिक प्रवेश करते हैं। उनमें से एक आदमी के हाथ में कटा सिर है। उस सिर को चन्द्रगुप्त को दिखाकर वह कहता है**—]

**सैनिक**—महाराज यही दलपति का सिर है।

**चन्द्रगुप्त**—कौन दलपति का ?

**सैनिक**—पच्चीस घातक महाराज के सोने के कमरे में सुरंग काटकर अस्त्र लिये हुए छिपे थे। हमें मंत्री महाशय ने उनके वध करने के लिए वहाँ भेजा था। हमलोग उन पच्चीस घातकों को वध कर आये हैं और यह उनके दलपति का सिर ले आये हैं!

**चन्द्रगुप्त**—(**सिर देख कर**) यह तो नंद का साला वाचाल है। अच्छा जाओ।

[ **सैनिक गण चले जाते हैं** ]

**चन्द्रगुप्त**—तभी तो !

[ एक सेनाध्यक्ष का प्रवेश ]

**सेनाध्यक्ष**—महाराज की जय हो।

**चन्द्रगुप्त**—क्या संवाद है ?

**सेनाध्यक्ष**—विद्रोही लोग नगर को आक्रमण करने आये थे; परन्तु हम लोगों को होशियार और सशस्त्र देखकर लौट गए।

**चन्द्रगुप्त**—किसने तुम लोगों को होशियार रहने को कहा था ?

**सेनाध्यक्ष**—मंत्री महाशय ने।

**[ चन्द्रगुप्त एक दृष्टि से शून्य में देखने लगते हैं। सेनाध्यक्ष धीरे-धीरे चला जाता है। चन्द्रगुप्त पहले की तरह देखते रहते हैं। ]**

उपर्युक्त प्रसंग में चन्द्रगुप्त ने अधिकार का प्रदर्शन करना चाहा है किंतु वह प्रदर्शन हास्यास्पद हो गया है। चन्द्रगुप्त एक रूठे हुए बालक के समान अपने सम्मान की माँग करता है। चाणक्य का भी ऐसा स्वभाव नहीं है जैसा कि नाटककार ने चित्रित किया है। इतिहास ने चाणक्य को हठी और उद्धत कहा है, यहाँ चाणक्य तो जैसे चापलूस और सीधा-सादा मंत्री है। चन्द्रगुप्त बिना किसी हिचक के महामंत्री चाणक्य को सैनिकों से बन्दी करने के लिए कह देता है। सैनिक बन्दी करने के लिए वढ़ते भी हैं। जो चाणक्य नंद के द्वारा केवल निकाले जाने पर उसके वंश के विनाश की प्रतिज्ञा करता है, वह तुच्छ सैनिकों द्वारा बन्दी किये जाने की वात पर क्या न करता, यह चाणक्य के स्वभाव से परिचित व्यक्ति सहज ही जान सकता है लेकिन यहाँ का चाणक्य ब्राह्मणत्व पर आकाश-पाताल की वातें करता है, और स्वयं के लांछित होने पर शांत भाव से खड़ा रहता है। अधिक से अधिक शूद्र[1] कह कर फिर महाराज कहने लगता है। यहाँ तो दोनों चरित्र ही हास्यास्पद हो गए हैं। श्री द्विजेन्द्र लाल राय के नाटकों में भावुकता और भावातिरेक ( शायद बंगाली

---

**१. राय महाशय भी चन्द्रगुप्त के शूद्र होने की भ्रान्ति में थे।**

कलाकार होने के नाते ) इतना अधिक है कि अनेक स्थलों पर परिस्थितियों के चित्र अतिरंजित होकर विगड़ गए हैं और उनमें से पारसी रंगमंच की दुर्गन्ध आने लगती है।

चन्द्रगुप्त न इतना छिछोरपन कर सकता है और न चाणक्य इतना शांत ही रह सकता है। मुद्राराक्षस में तो चाणक्य अग्नि की भाँति जलता है और उसके आतंक से घटनाएँ ही नहीं, पात्र भी आप-से-आप उसकी इच्छानुसार चलने लगते हैं। प्रस्तुत अवतरण में इसकी तो नकल हुई है किन्तु चरित्र विखर गए हैं। घटनाएँ जैसे चाणक्य के जाने का रास्ता देखती थीं। जेसे ही चाणक्य रंगमंच से जाता है कि पाँच सशस्त्र सैनिक एक आदमी का कटा सिर लाकर कहते हैं कि पच्चीस घातक महाराज के सोने के कमरे में सुरंग काट कर अस्त्र ( या शस्त्र ? ) लिये हुए छिपे थे। हमें मंत्री महाशय ने उनके वध करने के लिए वहाँ भेजा था। हम लोग उन पच्चीसों घातकों को वध कर आये हैं और यह उनके दलपति का सिर ले आए हैं। ( पाँच ने सजग पच्चीसों को मार डाला और पाँच में एक भी घायल नहीं हुआ ! ) इन पाँच सैनिकों के वाद सेनाध्यक्ष प्रवेश करता है और कहता है कि मंत्री महाशय की सजग रहने की आज्ञा से यह हुआ कि विद्रोही लोग नगर को ( या पर ? ) आक्रमण करने आये थे परन्तु हम लोगों को सशस्त्र देख कर लौट गए।

संक्षेप में राय महाशय का चन्द्रगुप्त नाटक विशेषकर चन्द्रगुप्त के चरित्र-चित्रण की यथार्थता स्पष्ट नहीं कर सका।

अंत में स्वर्गीय श्री जयशङ्कर प्रसाद रचित चन्द्रगुप्त नाटक लीजिए। उसमें कौमुदी महोत्सव का प्रसंग चतुर्थ अंक के तीसरे दृश्य में है—

## चतुर्थ अंक

### ३

**राक्षस—(प्रवेश करके)** तो आप लोगों की सम्मति है कि विजयोत्सव न

मनाया जाय ! मगध का उत्कर्ष उसके गर्व का दिन यों ही फीका रह जाय ?

**शकटार**—मैं तो चाहता हूँ, परन्तु आर्य चाणक्य की सम्मति इसमें नहीं है।

**कात्यायन**—जो कार्य विना किसी आडंवर के हो जाय, वही तो अच्छा है।

[ **मौर्य सेनापति और उसकी स्त्री का प्रवेश** ]

**मौर्य**—विजयी होकर चन्द्रगुप्त लौट रहा है, हम लोग आज भी उत्सव न मनाने पावेंगे ? राजकीय आवरण में यह कैसी दासता है ?

**मौर्य-पत्नी**—तव यही स्पष्ट हो जाना चाहिए कि कौन इस राज्य का अधीश्वर है ! विजयी चन्द्रगुप्त अथवा यह ब्राह्मण या परिषद् ?

**चाणक्य**—(**राक्षस की ओर देखकर**) राक्षस ! तुम्हारे मन में क्या है ?

**राक्षस**—मैं क्या जानूँ, जैसी सव लोगों की इच्छा।

**चाणक्य**—मैं अपने अधिकार और दायित्व को समझ कर कहता हूँ कि वह उत्सव न होगा !

**मौर्य-पत्नी**—तो मैं ऐसी पराधीनता में नहीं रहना चाहती। (**मौर्य से**) समझा न ! हम लोग आज भी वंदी हैं ?

**मौर्य**—(**क्रोध से**) क्या कहा, वंदी ! नहीं, ऐसा नहीं हो सकता ! हम लोग चलते हैं। देखूँ, किसकी सामर्थ्य है जो रोके ! अपमान से जीवित रहना मौर्य नहीं जानता। चलो !

[ **दोनों का प्रस्थान** ]

[**चाणक्य और कात्यायन को छोड़कर सब जाते हैं।**]

**कात्या०**—विष्णुगुप्त, तुमने समझ कर ही ऐसा किया होगा। फिर भी मौर्य का इस तरह चले जाना चन्द्रगुप्त को....

**चाणक्य**—वुरा लगेगा ? क्यों ? भला लगने के लिए मैं कोई काम नहीं करता, कात्यायन ! परिणाम में भलाई ही मेरे कामों की कसौटी है। तुम्हारी इच्छा हो तो तुम भी चले जाओ ! बको मत !

[ **कात्यायन का प्रस्थान** ]

**चाणक्य**—कारण समझ में नहीं आता—यह वात्याचक्र क्यों ? ( **विचारता हुआ** )—क्या कोई नवीन अध्याय खुलने वाला है ? अपनी विजयों पर मुझे विश्वास है, फिर यह क्या ? (**सोचता है।**)

[ **सुवासिनी का प्रवेश** ]

**सुवा०**—विष्णुगुप्त !

**चाणक्य**—कहो सुवासिनी !

**सुवा०**—अभी परिषद् गृह से जाते हुए पिता जी बहुत दुखी दिखाई दिये, तुमने अपमान किया क्या ?

**चाणक्य**—यह तुमसे किसने कहा ? इस महत्व को रोक देने से साम्राज्य का कुछ बनता विगड़ता नहीं। मौर्यों का जो कुछ है, वह मेरे दायित्व पर है। अपमान हो या मान, मैं उसका उत्तरदायी हूँ। और पितृत्व तुल्य शकटार को मैं अपमानित करूँगा; यह तुम्हें कैसे विश्वास हुआ ?

**सुवा०**—तो राक्षस ने ऐसा क्यों......?

**चाणक्य**—कहा, ऍं ? सो तो कहना ही चाहिए ! और तुम्हारा भी उस पर विश्वास होना आवश्यक है; क्यों न सुवासिनी ?

**सुवा०**—विष्णुगुप्त ? मैं एक समस्या में डाल दी गई हूँ।

**चाणक्य**—तुम स्वयं पड़ना चाहती हो, कदाचित् यह ठीक भी है।

**सुवा०**—व्यंग्य न करो; तुम्हारी कृपा मुझ पर होगी ही, मुझे इसका विश्वास है।

**चाणक्य**—मैं तुमसे वाल्यकाल से परिचित हूँ, सुवासिनी ! तुम खेल में भी हारने के समय रोते हुए हँस दिया करतीं और तव मैं हार स्वीकार कर लेता। इधर तो तुम्हारा अभिनय का अभ्यास भी बढ़ गया है ! तव तो....( **देखने लगता है।** )

**सुवा०**—यह क्या विष्णुगुप्त ! तुम संसार को अपने वश में करने का संकल्प रखते हो ! फिर अपने को नहीं ? देखा दर्पण लेकर—

तुम्हारी आँखों में तुम्हारा यह कौन सा नवीन चित्र है ?

[ प्रस्थान ]

**चाणक्य**—क्या ? मेरी दुर्वलता ? नहीं ! कौन है ?

**दौवारिक**—(प्रवेश करके) जय हो आर्य, रथ पर मालविका आई हैं।

**चाणक्य**—उसे सीधे मेरे पास लिवा आओ !

[ दौवारिक का प्रस्थान—एक चर का प्रवेश ]

**चर**—आर्य ! सम्राट् के पिता और माता दोनों व्यक्ति रथ पर अभी बाहर गये हैं। ( जाता है। )

**चाणक्य**—जाने दो ! इनके रहने से चन्द्रगुप्त के एकाधिपत्य में वाधा होती ! स्नेहातिरेक से वह कुछ का कुछ कर वैठता।

[ दूसरे चर का प्रवेश ]

**दूसरा**—( प्रणाम करके ) जय हो आर्य ! वाल्हीक में नयी हलचल है। विजेता सिल्यूकस अपनी पश्चिमी राजनीति से स्वतंत्र हो गया है। अब वह सिकन्दर के पूर्वी प्रान्तों की ओर दत्तचित है। वाल्हीक की सीमा पर नवीन यवन-सेना के शस्त्र चमकने लगे हैं।

**चाणक्य**—(चौंक कर) और गांधार का समाचार ?

**दूसरा**—अभी कोई नवीनता नहीं है।

**चाणक्य**—जाओ। (चर का प्रस्थान) क्या उसका भी समय आ गया ? तो ठीक है। ब्राह्मण ! अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रह ! कुछ चिन्ता नहीं, सब सुयोग आप ही चले आ रहे हैं।

[ ऊपर देखकर हँसता है, मालविका का प्रवेश ]

**माल०**—आर्य, प्रणाम करती हूँ। सम्राट् ने श्री चरणों में सविनय प्रणाम करके निवेदन किया है कि आपके आशीर्वाद से दक्षिणापथ में अपूर्व सफलता मिली, किन्तु सुदूर दक्षिण जाने के लिए आपका निषेध सुनकर लौटा आ रहा हूँ। सीमान्त के राष्ट्रों ने भी मित्रता स्वीकार कर ली है।

**चाणक्य**—मालविका, विश्राम करो। सब बातों का विवरण एक साथ ही लूंगा।

**माल०**—परन्तु आर्य ! स्वागत का कोई उत्साह राजधानी में नहीं ?

**चाणक्य**—मालविका, पाटलिपुत्र षड्यंत्रों का केन्द्र हो रहा है! सावधान ! चन्द्रगुप्त के प्राणों की रक्षा तुम्हीं को करनी होगी।

**यहाँ कौमुदी महोत्सव विजयोत्सव में परिवर्तित हो गया है। यह भी द्विजेन्द्रलाल राय का अनुकरण है। मुद्राराक्षस में जो कुसुमपुर की विजय में कौमुदी महोत्सव का प्रसंग है वह राय महोदय ने अपने चन्द्रगुप्त नाटक में दक्षिणात्य जय करने के उत्सव का प्रसंग बना दिया है; यही परिवर्तन प्रसाद जी ने भी कर दिया है। आगे के दृश्य में चन्द्रगुप्त और चाणक्य में संघर्ष चित्रित किया गया।**

प्रभात—राजमंदिर का एक प्रान्त

**चन्द्रगुप्त**—(**अकेले टहलता हुआ**) चतुर सेवक के समान संसार को जगा कर अंधकार हट गया। रजनी की निस्तब्धता काकली से चंचल हो उठी है। नीला आकाश स्वच्छ होने लगा है, या निद्राक्लांत दिशा उषा की शुभ्र चादर ओढ़ कर नींद की गोद में लेटने चली है। यह जागरण का अवसर है। जागरण का अर्थ है कर्म्म-क्षेत्र में अवतीर्ण होना ! और कर्म्मक्षेत्र क्या है ? जीवन-संग्राम ! किन्तु भीषण संघर्ष करके भी मैं कुछ नहीं हूँ। मेरी सत्ता एक कठपुतली-सी है। तो फिर........मेरे पिता........मेरी माता, इनका तो सम्मान आवश्यक था। वे चले गए, मैं देखता हूँ कि नागरिक तो क्या, मेरे आत्मीय भी आनन्द मनाने से वंचित किए गए। यह परतंत्रता कब तक चलेगी ! प्रतिहारी !

**प्रतिहारी**—(**प्रवेश करके**) जय हो देव !

**चन्द्रगुप्त**—आर्य चाणक्य को शीघ्र लिवा लाओ !

[ **प्रतिहारी का प्रस्थान** ]

**चन्द्रगुप्त**—(**टहलते हुए**) प्रतिकार आवश्यक है !

[ चाणक्य का प्रवेश ]

**चन्द्र०**—आर्य्य, प्रणाम !

**चाणक्य**—कल्याण हो आयुष्मन्, आज तुम्हारा प्रणाम भारी-सा है !

**चन्द्र०**—मैं कुछ पूछना चाहता हूँ।

**चाणक्य**—यह तो मैं पहले ही से समझता था ! तो तुम अपने स्वागत के लिए लड़कों के सदृश रूठे हो ?

**चन्द्र०**—नहीं आर्य, मेरे माता पिता—मैं जानना चाहता हूँ कि उन्हें किसने निर्वासित किया।

**चाणक्य**—जान जाओगे तो उसका वध करोगे ! क्यों ?

( हँसता है )

**चन्द्र०**—हँसिये मत ! गुरुदेव ! आपको मर्य्यादा रखनी चाहिए, यह मैं जानता हूँ। परन्तु वे मेरे माता-पिता थे, यह आपको भी जानना चाहिए।

**चाणक्य**—तभी तो मैंने उन्हें उपयुक्त अवसर दिया। अब उन्हें आवश्यकता थी शान्ति की, उन्होंने वानप्रस्थाश्रम ग्रहण किया है। इसमें खेद करने की कौन बात है ?

**चन्द्र०**—यह अक्षुण्ण अधिकार आप कैसे भोग रहे हैं ? केवल साम्राज्य का ही नहीं, देखता हूँ, आप मेरे कुटुम्ब का भी नियंत्रण अपने हाथों में रखना चाहते हैं।

**चाणक्य**—चन्द्रगुप्त ! मैं ब्राह्मण हूँ, मेरा साम्राज्य करुणा का था, मेरा धर्म प्रेम का था। आनन्द समुद्र में शांतिद्वीप का अधिवासी ब्राह्मण मैं, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र मेरे दीप थे, अनन्त आकाश वितान था, शस्यश्यामला कोमला विश्वम्भरा मेरी शय्या थी। बौद्धिक विनोद कर्म था, संतोष धन था। उस अपनी, ब्राह्मण की जन्म-भूमि को छोड़कर कहाँ आ गया ! सौहार्द्र के स्थान पर कुचक्र; फूलों के प्रतिनिधि काँटे, प्रेम के स्थान में भय। ज्ञानामृत के परिवर्तन में कुमंत्रणा ! पतन और कहाँ तक हो सकता है ! ले लो

मौर्य्य चन्द्रगुप्त ! अपना अधिकार, छीन लो। यह मेरा पुनर्जन्म होगा। मेरा जीवन राजनीतिक कुचक्रों से कुत्सित और कलंकित हो उठा है। किसी छाया-चित्र; किसी काल्पनिक महत्व के पीछे, भ्रमपूर्ण अनुसंधान करता दौड़ रहा हूँ। शांति खो गई, स्वरूप विस्मृत हो गया। जान गया, मैं कहाँ और कितने नीचे हूँ।

[ **प्रस्थान** ]

**चन्द्र०**—जाने दो ! ( **दीर्घ निश्वास लेकर** )—तो क्या मैं असमर्थ हूँ ? ऊँह, सब हो जायगा !

**सिंहरण**—( **प्रवेश करके** ) सम्राट की जय हो ! कुछ विद्रोही और षड्यंत्रकारी पकड़े गए हैं। एक बड़ी दुखद घटना भी हो गई है।

**चन्द्र०**—( **चौंक कर** ) क्या ?

**सिंहरण**—मालविका की हत्या........( **गद्गद् कण्ठ से** )—आपका परिच्छेद पहनकर वह आप ही की शय्या पर लेटी थी।

**चन्द्रगुप्त**—तो क्या उसने इसलिये मेरे शयन का प्रबन्ध दूसरे प्रकोष्ठ में किया ! आह ! मालविका !

**सिंहरण**—आर्य चाणक्य की सूचना पाकर नायक पूरे गुल्म के साथ राजमंदिर की रक्षा के लिए प्रस्तुत था। एक छोटा-सा युद्ध होकर वे हत्यारे पकड़े गए ! परन्तु उनका नेता राक्षस निकल भागा।

**चन्द्र०**—क्या राक्षस उनका नेता था !

**सिंह०**—हाँ सम्राट् ! गुरुदेव बुलाये जायँ ?

**चन्द्र०**—वही तो नहीं हो सकता, वे चले गये। कदाचित् न लौटेंगे।

**सिंह०**—ऐसा क्यों ? क्या आपने कुछ कह दिया ?

**चन्द्र०**—हाँ सिंहरण ! मैंने अपने माता-पिता के चले जाने का कारण पूछा था।

**सिंह०**—( **निश्वास लेकर** ) तो नियति कुछ अदृष्ट-सा सृजन कर रही है सम्राट्, मैं गुरुदेव को खोजने जाता हूँ।

**चन्द्रगुप्त**—( विरक्ति से )—जाओ; ठीक है—अधिक हर्ष, अधिक उन्नति के बाद तो अधिक दुःख और पतन की बारी आती है।

[ **सिंहरण का प्रस्थान** ]

**चन्द्रगुप्त**—पिता गये, माता गई, गुरुदेव गये, कन्धे से कन्धा भिड़ा कर प्राण देने वाला चिर सहचर सिंहरण गया, तो भी चन्द्रगुप्त को रहना पड़ेगा और रहेगा! परन्तु मालविका! आह, वह स्वर्गीय कुसुम!

[ **चिन्तित भाव से प्रस्थान** ]

प्रस्तुत अवतरण में श्री जयशंकर प्रसाद ने 'कौमुदी महोत्सव' के प्रसंग में कुछ परिवर्तन कर दिया। पहले तो यह प्रसंग दो दृश्यों में विभाजित किया गया है। पहले में 'कौमुदी महोत्सव' कुसुमपुर विजयोत्सव के स्थान पर दक्षिणापथ की विजय के उत्सव में परिणत किया गया है ( जो स्पष्टतः श्री द्विजेन्द्रलाल राय का प्रभाव ज्ञात होता है ) और दूसरे में माता-पिता के निर्वासित होने के फलस्वरूप उठने वाली चन्द्रगुप्त की व्यथा और उसके बीच में स्वागत के प्रति उदासीनता ने चन्द्रगुप्त को चाणक्य से स्पष्ट बात कहने की शक्ति दी है। उस मनोवृत्ति की पृष्ठभूमि में नाटककार ने रजनी की स्तब्धता के बाद जागरण की वेला का चित्र खींचा है जिसे जागरण की प्रस्तावना कहा गया है और जागरण का अर्थ है कर्मक्षेत्र में अवतीर्ण होना। और कर्मक्षेत्र क्या है? जीवन-संग्राम। किन्तु चन्द्रगुप्त में फिर भी इतनी शक्ति नहीं है कि वह चाणक्य के सामने जीवन-संग्राम की प्रस्तावना भी उपस्थित कर सके।

चन्द्रगुप्त अपने स्वागत की चर्चा छेड़ने के लिये ही संभवतः आर्य चाणक्य को बुलवा भेजता है किन्तु चाणक्य ने चन्द्रगुप्त का प्रणाम 'भारी-सा' जान कर उसकी चर्चा स्वयं छेड़ दी। लाचार चन्द्रगुप्त को अपने माता-पिता के निर्वासन का प्रसंग लेकर चाणक्य के अक्षुण्ण अधिकार के भोगने पर प्रश्न-चिह्न लगाना पड़ा। और जैसे ही चन्द्रगुप्त यह प्रश्नचिह्न लगाता है कि चाणक्य ब्राह्मणत्व का निवृत्ति मार्ग सराहते हुए स्वयं अपना

तिरस्कार करता है और 'मंत्री' के अधिकार से मुक्त हो जाने का प्रस्ताव करता है और चला भी जाता है। उसके जाते ही चाणक्य की नीति से फलीभूत होने वाली घटनाएँ सामने आती हैं, चन्द्रगुप्त के प्राणों का मूल्य मालविका को देना पड़ता है और चन्द्रगुप्त माता-पिता, सिंहरण और गुरुदेव के जाने से दुखी और मालविका के मरण से आहत होकर एक निश्वास छोड़ कर रह जाता है।

प्रसाद जी पर श्री द्विजेन्द्रलाल राय का प्रभाव तो अवश्य पड़ा किन्तु प्रसाद ने भावनातिरेक में अपने चरित्रों को विकृत होने से वचाया है। फिर भी कवि होने के कारण प्रसाद के पात्र अपने स्वगत-कथनों में वड़े कल्पनाशील हो जाते हैं और काव्यमयी भाषा में जीवन के सिद्धान्तों का निरूपण करने लगते हैं। उनके 'अजातशत्रु' नाटक में तो जीवन के भयानक और भीषण कर्म करनेवाले पात्र भी कविता की कल्पनाशील तरंगों में वहने लगते हैं। विरुद्धक इसका प्रमाण है। उदयन, विम्वसार, श्यामा यदि कविता के प्रभाव में अपनी समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न करें तो वात समझ में आ सकती है।

चन्द्रगुप्त का ऐतिहासिक व्यक्तित्व ऐसा है जो कल्पना में अधिक विश्वास नहीं कर सकता। उसने जीवन के संघर्षों में इतना अधिक भाग लिया था कि वह भावुक तो वन ही नहीं सकता था। कहाँ तो मुद्राराक्षस नाटक में चन्दनदास की स्त्री जैसी साधारण पात्र को भी केवल एक स्थान पर आने का अवकाश दिया गया है, (अन्यथा समस्त नाटक में एक स्त्री पात्र नहीं है) और कहाँ प्रसाद जी के चन्द्रगुप्त नाटक में दस स्त्री पात्र हैं। राजनीति में भाग लेने के साथ ही साथ उन लोगों में प्रणय-लीला भी चलती जाती है और चन्द्रगुप्त तो प्रेमिकाओं का नायक है। वह युद्ध-क्षेत्र में भाग लेते हुए भी समय निकाल लेता है कि अपनी प्रेयसियों से वातें करे। एक स्थान पर तो स्वयं चाणक्य को कहना पड़ा कि............ छोकरियों से वातें करने का समय नहीं है, मौर्य ! (अंक २, दृश्य ४)।

प्रसाद जी प्रेम और यौवन के नाटककार हैं और उनके नाटकों में ये

प्रणय की अभिसंधियाँ बरावर चला करती हैं। चन्द्रगुप्त जैसा वीर पुरुष जिसने समरांगण की चित्रपटी में अपने जीवन का चित्र सजाया है, न जाने कितनी प्रेमिकाओं के गूँथे हुए हार पहिन कर समय की दीवाल पर सुसज्जित होना चाहता है। प्रसाद जी की प्रेमांकन की चरम स्थिति तो अपनी पराकाष्ठा पर तव पहुँचती है जव अर्थशास्त्र के रचयिता और कूटनीति के विधायक काले कुरूप ब्राह्मण आचार्य चाणक्य की सूखी शिराओं में भी प्रेम का अंगराग तरुण रक्त वन कर संचरित होता है और सुवासिनी की स्मृति में रूप तथा सौन्दर्य की आकांक्षा हृदय को अधिक स्पंदनशील वना देती है।

चाणक्य और प्रेम! चाणक्य के पास हृदय था, यह कहना कठिन है। उसका मस्तिष्क ही इतना वड़ा था कि वह सिर से लेकर वक्षस्थल तक फैला हुआ था। चाणक्य प्रेम करने के पूर्व अपनी प्रेयसी के कपोल-कूपों में पहले राजनीति की गहराई देखता वाद में मुस्कुराहट का रहस्य!

चाहे वह चन्द्रगुप्त के माता-पिता का निर्वासन हो, चाहे दक्षिणापथ में विजय प्राप्त कर लौटने पर स्वागत का प्रसंग हो, चाणक्य और चन्द्र-गुप्त में स्पष्ट वार्तालाप का अवसर ही प्रसाद जी ने अपने नाटक में नहीं आने दिया। चन्द्रगुप्त 'यह अक्षुण्ण अधिकार आप कैसे भोग रहे हैं?' कहता ही है कि चाणक्य उसे टाल कर चला जाता है और चन्द्रगुप्त 'पिता गये, माता गई, गुरुदेव गये' कह कर स्वर्गीय कुसुम 'मालविका' की स्मृति में अपनी रोदनशीला प्रकृति जोड़ देता है। यहाँ भी 'गुरुदेव' चाणक्य 'शिष्य' चन्द्रगुप्त पर अंकुश की तरह तने हुए हैं और अपनी समस्त वीर प्रकृति लेकर भी चन्द्रगुप्त अपने अधिकारों के संवंध में चाणक्य से एक वात भी नहीं कह सका है। प्रणय की तीन-तीन ग्रंथियों में उलझा हुआ चन्द्रगुप्त अपने गुरुदेव के समक्ष अपना अधिकार दृढ़तापूर्वक रख ही कैसे सकता है, जव वह इससे पहले ही गुरुदेव की कड़ी डाँट खा चुका है—"छोकरियों से बातें करने का समय नहीं है, मौर्य!"

संक्षेप में, इतिहास-ग्रंथों से मुझे जो चन्द्रगुप्त का व्यक्तित्व मिला है,

उसके प्रति हमारे साहित्य में न्याय नहीं हो सका, मुझे ऐसा लगता है। मुद्राराक्षस नाटक में चन्द्रगुप्त धीरोदत्त नायक रह कर भी 'छल-कलह' से ही काँप उठता है। आर्य चाणक्य द्वारा आश्वासन पाकर भी कि 'तू झूठी कलह करके कुछ समय तक स्वतंत्र होकर अपना प्रवंध आप कर ले।' उसे 'वड़ा पाप' सा लगता है और चाणक्य का अभिनय-क्रोध देख-कर ही घवड़ा कर कहता है, 'अरे! क्या आर्य को सचमुच क्रोध आ गया ?' आर्य चाणक्य की राजनीति के आवर्त में वीरवर चन्द्रगुप्त तिनके की तरह चक्कर खा रहा है। श्री द्विजेन्द्रलाल राय ने चन्द्रगुप्त का वीरत्व-प्रदर्शन एक रूठे हुए वालक की मनचली हास्यास्पद मनोवृत्ति की भाँति चित्रित किया है। राय महाशय के नाटक से दिये गए उद्धरण के पूर्व दृश्य में चाणक्य जव चन्द्रकेतु के जाने के उपरान्त स्वगत-कथन में कहता है—'एक महान पवित्र उज्ज्वल राज्य छोड़ कर मैं कहाँ जा रहा हूँ! अव भी उसका आलोक-मंडित शिखर दिखायी पड़ रहा है। तव सव कुछ अंधकार में लुप्त हो जाने के पहले ही क्यों न लौट चलूं?—पिशाची! छोड़ दे, लौट जाऊँ। नहीं-नहीं—कहाँ लौट जाऊँगा! कौन हाथ पकड़ कर ले जायगा? मिथ्या, प्रवंचना, चौर्य, हत्या इन सवका भी तो एक राज्य है। इसमें वुरा क्या है! मजे में हूँ। खूव है।' आदि-आदि और चन्द्रगुप्त एक अदूरदर्शी सम्राट् की भाँति सैनिकों से चाणक्य को वन्दी करने को कहता है। जव सैनिक आगे वढ़ते हैं तो चाणक्य वड़े ही शांत भाव से हाथ के संकेत से उन्हें रोक देते हैं। और सैनिक सम्राट् के आदेश की अवहेलना करते हुए रुक भी जाते हैं। चाणक्य के चले जाने के वाद चन्द्र-गुप्त चन्द्रकेतु से खीजे हुए वालक की भाँति कहता है—'चन्द्रकेतु! मैं तुम्हारा उपदेश नहीं चाहता। तुम्हारे अनुरोध से मैंने चाणक्य को एक वार क्षमा कर दिया था—पर मैंने गलती की थी। ब्राह्मण की मजाल तो देखो! मैं महाराज हूँ, फिर भी कोई शक्ति नहीं है। भाई को क्षमा करने की भी मुझमें क्षमता नहीं, मानो राज्य का मैं कोई भी नहीं हूँ। केवल एक

महाराज का अभिनय कर रहा हूँ। इस व्यंग अभिनय से तो सीधी-सादी गुलामी अच्छी।''

राय महाशय ने वहुत अधिक भावुकता से दोनों चरित्रों—चंद्रगुप्त और चाणक्य—को मर्यादा के पद से गिरा दिया है।

प्रसाद जी ने श्री राय महोदय का अनुकरण करते हुए भी अपनी विशेषता रखी है। उन्होंने सुलझे हुए ढंग से चाणक्य और चन्द्रगुप्त दोनों के महत्व और गौरव का अच्छा प्रतिपादन किया है। जैसा मैंने पहले कहा कि भावनातिरेक से उनके चरित्र विकृत होने से बच गए हैं; किन्तु प्रणय के चक्रव्यूह में चाणक्य और चन्द्रगुप्त दोनों ही मार्ग-भ्रष्ट-से होते दीख रहे हैं। वीरत्व से कहीं अधिक प्रेम चन्द्रगुप्त का धर्म हो गया है और संन्यास के सूने क्षणों में चाणक्य पर भी राजनीति के स्थान पर प्रेम की स्मृतियाँ प्रहार कर बैठती हैं। चाणक्य और चन्द्रगुप्त में गुरु-शिष्य का ऐसा कठिन कठोर सम्बन्ध है कि चन्द्रगुप्त अपने महान् व्यक्तित्व से उद्‌भूत अधिकार की अवहेलना में एक वाक्य भी स्पष्ट कंठ से नहीं कह सकता और चाणक्य उसका स्पष्टीकरण करना अपने महान् 'ब्राह्मणत्व' के आदर्श से बहुत नीचा समझता है और ऐसा व्यवहार करता है कि चन्द्रगुप्त एक मच्छर की तरह उसके कानों के पास कुछ भनभना गया और उसने हाथ की हवा से उसे दूर कर दिया या उस स्थान से चला गया।

चन्द्रगुप्त और चाणक्य के इस गंभीर चरित्र-चित्रण का उत्तरदायित्व मैंने अपने ऊपर लेने का साहस किया है। इस संबंध में बौद्ध तथा ब्राह्मण ग्रंथों, मेगस्थनीज तथा चन्द्रगुप्त के इतिहास से सम्बन्ध रखने वाले समस्त ग्रंथों के अध्ययन को मैंने प्रमुख स्थान दिया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र का अनुशीलन कर मैंने तत्कालीन वातावरण का अन्तर्दृश्य प्राप्त करने की चेष्टा की है। मैंने अपना कथानक मुद्राराक्षस की कथावस्तु के अनुसार ही रखा है जिसमें कुसुमपुर की विजय के उपरान्त 'कौमुदी महोत्सव' के मनाये जाने का आयोजन है। पाटलिपुत्र का भौगोलिक ज्ञान मैंने मेगस्थ-नीज और हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता से लेकर कौमुदी महोत्सव की

सजावट अपनी कल्पना से प्रस्तुत की है। चन्द्रगुप्त के इतिहास से उसका जो व्यक्तित्व मिला है उसे मैंने मनोविज्ञान में इस प्रकार सुसज्जित किया है कि चन्द्रगुप्त के द्वारा प्रयुक्त समस्त उपमाएँ भी वीररस से परिपूर्ण हैं।

राजनर्त्तकी और चन्द्रगुप्त का वार्तालाप चन्द्रगुप्त के वीरत्व के साथ राजसी प्रकृति का प्रतीक है जिससे वह वास्तव में धीरोदात्त नायक बनता है। चाणक्य का ऐसे अवसर पर आ जाना जब कि चन्द्रगुप्त राजनर्त्तकी को पुरस्कार देने जा रहा है; मेरे नाटकीय कथा-वस्तु का प्रथम कौतूहल है। चन्द्रगुप्त और चाणक्य का अपने दृष्टिकोण के आधार पर जो विवाद हुआ है वह प्रत्येक के स्पष्ट कंठ से निकला है और दोनों के व्यक्तित्व का पूर्ण परिचायक है। इसी अंग की साहित्य में प्रथम बार अभिव्यक्ति और स्पष्टता के लिए मैंने नाटक की रचना और सजावट की है। दोनों अपने-अपने क्षेत्र के अधिकारी हैं और विशेषता इस बात में है कि दोनों अपनी मर्यादा में रहकर सागर की भाँति गर्जन करते हैं और अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व की मान्यता के लिए प्रबल कारण उपस्थित करते हैं। दोनों के द्वारा दिये हुए कारण अपनी विशेष परिस्थितियों में सत्य हैं और विवेक-पूर्ण भी। नीति और कूटनीति में चाणक्य अवश्य श्रेष्ठ है और अन्त की घटना ही उसे श्रेष्ठ प्रमाणित कर देती है, जैसा कि ऐतिहासिक सत्य है। मैं अपनी कल्पना में वैभवशाली होते हुए भी ऐतिहासिक वातावरण और सत्य के प्रतिकूल नहीं जा सकता था, अतः अन्त में चन्द्रगुप्त को कहना ही पड़ा कि 'कौमुदी महोत्सव नहीं होगा।' किन्तु इसके पूर्व दोनों महापुरुषों के व्यक्तित्व को अपनी महानता में उभरने का पूर्ण अवसर दिया गया है। अन्तिम घटना जिसमें राजनर्त्तकी अलका और वसुगुप्त के वास्तविक व्यक्तित्व का उद्घाटन होता है, चाणक्य की वाक्शक्ति, अन्त-र्दृष्टि, नीति और तर्क की महानता के सिद्ध करने के लिये ही नियोजित की गई हैं। आशा है, मेरे इस प्रयास में हमारे देश के महान् सम्राट् चन्द्र-गुप्त को अपने व्यक्तित्व के प्रकाशन के लिये यथेष्ट बल और वाणी

मिलेगी और भारतीय साहित्य और इतिहास का यह लांछन यथासम्भव दूर होगा।

आप इस दृष्टि से मेरे नाटक को पढ़ने की कृपा करें और मुझे सूचित करने का कष्ट करें कि कहाँ तक मैं अपने प्रयास में सफल हुआ हूँ।

यह नाटक आल इंडिया रेडियो के लिए लिखा गया था और शनिवार, ९ अक्टूबर १९४८ को दस वजे रात वह दिल्ली स्टूडियो से सफलतापूर्वक प्रसारित भी हुआ था। यही कारण है कि इसका प्रतिन्यास ध्वनि-आलेखन के रूप में हुआ।

इस लम्बी भूमिका के लिए आप मुझे क्षमा करें किन्तु अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के लिए यह आवश्यक था। अब कृपया मेरे नाटक को पढ़ने के लिए पृष्ठ उलटने का कष्ट करें।

साकेत, ( प्रयाग )
१८-९-४९

**रामकुमार वर्मा**

# कौमुदी महोत्सव

नाटक के पात्र

| | | | |
|---|---|---|---|
| सम्राट् चन्द्रगुप्त | :: | :: | कुसुमपुर के मौर्य सम्राट् |
| चाणक्य | :: | :: | सम्राट् चन्द्रगुप्त के महामन्त्री |
| वसुगुप्त | :: | :: | कुसुमपुर के समाहर्त्ता |
| यशोवर्मन | :: | :: | कुसुमपुर के अन्तपाल |
| पुष्पदन्त | :: | :: | कुसुमपुर के कार्यान्तिक |
| अलका | :: | :: | राजनर्त्तकी |
| सैनिक और दौवारिक | | | |
| समय | :: | :: | ईस्वी पूर्व ३२२ |

[ बाहर चारों ओर कोलाहल हो रहा है। बीच-बीच में तुरही का नाद हो उठता है। शंख और घंटों की आवाज़ भी सुन पड़ती है। धीरे-धीरे यह ध्वनि क्षीण होती है।

राज-कक्ष में समाहर्त्ता वसुगुप्त और अन्तपाल यशोवर्मन बातें कर रहे हैं। ]

**वसुगुप्त**—आज कुसुमपुर की जनता का कोलाहल कितना उभरा हुआ है! ढाल के मध्य भाग की भाँति वह किसी भी तलवार का वार रोकने के लिए आगे बढ़ आया है। कुसुमपुर का उत्साह एक ढाल की तरह है जिस पर विद्रोह की तलवार भी कुंठित हो जायेगी। अब तो अन्तपाल यशोवर्मन का सन्देह दूर हो गया होगा।

**यशोवर्मन**—वसुगुप्त! सन्देह पानी का बुलबुला नहीं है जो एक क्षण में भंग हो जाता है। सन्देह तो धूमकेतु की रेखा है जो आकाश में एक छोर से दूसरे छोर तक फैली रहती है, और धूमकेतु जानते हो किस बात का प्रतीक है? भय का, आशंका का, अमंगल का!

**वसुगुप्त**—किन्तु भय, आशंका और अमंगल तो नहीं हैं। नंदवंश का विनाश होते ही ये ढाक के तीन पात की तरह अलग हो गए।

**यशोवर्मन**—अलग-अलग भले ही हो गए हों, पर हैं तो !

**वसुगुप्त**—अब रहे भी नहीं। जब शक, यवन, पारस और वाह्लीक राजाओं के साथ महाराज चन्द्रगुप्त ने कुसुमपुर में प्रवेश किया तो सारी प्रजा ने उनका स्वागत किया। क्या इस कोलाहल में तुमने प्रजाजनों के उत्साह की सरिता उमड़ते हुए नहीं देखी ?

**यशोवर्मन**—देखी, किन्तु इस उत्साह के बीच ऐसे कंठ भी हो सकते हैं जिनमें व्यंग्य और परिहास की ध्वनि हो। नंद के प्रति राज-भक्ति अभी निष्प्राण नहीं हुई है। हरी घास में कुश और कंटक भी होंगे।

**वसुगुप्त**—तो वे निर्मूल कर दिये जावेंगे।

**यशोवर्मन**—किन्तु आपको क्या ज्ञात नहीं है कि महाराज नंद के मंत्री राक्षस की नीति छद्मवेश धारण कर चलती है ? नंद नहीं हैं, किन्तु नंद के मंत्री तो हैं जो छिपकर कुसुमपुर से बाहर चले गये हैं !

**वसुगुप्त**—तो हमारे पास भी पहिचाननेवाली आँखें हैं। ( **जनरव फिर बढ़ता है** ।) देखा, यह जनरव बढ़ रहा है ! वातायन बन्द कर दो।

**यशोवर्मन**—हाँ, बात ही नहीं सुन पड़ती। (**वातायन बन्द करते हैं** ।)

**वसुगुप्त**—तो सम्राट् चन्द्रगुप्त ने जब कुसुमपुर में प्रवेश किया तो पहला कार्य तो यहाँ की शासन-व्यवस्था ठीक करना है।

**यशोवर्मन**—आचार्य चाणक्य के मस्तिष्क में राजनीति के न जाने कितने व्यूह प्रतिदिन बनकर बिगड़ते हैं, उनसे अधिक राजनीति की व्यवस्था कौन कर सकता है ?

**वसुगुप्त**—तो क्या सम्राट् चन्द्रगुप्त का मस्तिष्क केवल बाहुबल का केन्द्र ही है ?

**यशोवर्मन**—हाँ, आचार्य चाणक्य की नीति और सम्राट् चन्द्रगुप्त के

बाहुबल ने ही नंदवंश को समाप्त किया है। नंदवंश की विलासिता-संध्या सम्राट् चन्द्रगुप्त की यश-चन्द्रिका के समक्ष अधिक देर तक नहीं रुक सकी।

[ **नेपथ्य में 'सम्राट् चन्द्रगुप्त की जय' का घोष** ]

**वसुगुप्त**—( **उत्सुकता से** ) सम्राट् आ गए ? तो क्या जनता का इतना कोलाहल उन्हीं के स्वागत के लिए था ? वातायन खोलकर देखो, यशोवर्मन !

**यशोवर्मन**—मैं देखता हूँ। ( **वातायन खोलते हैं। जनरव फिर तीव्रता से सुनाई पड़ता है।** ) हाँ, जनता उत्सुकता से पुष्पों के हार उछाल रही है ! महाराज ने अंतरंग प्रकोष्ठ सिंह-द्वार से प्रवेश कर लिया है; उनका वेश इस समय दर्शनीय है। विस्तीर्ण ललाट, उठी हुई नासिका और बड़े-बड़े अरुण नेत्र। वे नागरिकों से कुछ कह भी रहे हैं। कहते समय उनकी वाणी में वीरत्व उसी प्रकार गुंजायमान होता है जैसे दिशाओं में दूर से आती हुई प्रतिध्वनि सिमिट कर अंतिम स्वर में गूंजती है। उनको भौंहों में स्वाभाविक रूप से बल पड़े हुए हैं जैसे दृष्टि के ऊपर आकांक्षाएँ वक्र होकर दुहरी हो गई हैं। घुंघराले मुक्त केशों पर मुकुट है जिसकी कलंगी सिर के हिलने मात्र से लज्जाशील नारी की दृष्टि की भाँति झुक जाती है। भुज-दण्डों में शक्ति का संचय है, ज्ञात होता है; जैसे वे राज्य के मेरु-दण्ड हैं। सैनिकों जैसा वेश, हृदय पर मोतियों की माला, कमर में मखमली म्यान के भीतर खड्ग ! बड़ा उत्साह-पूर्ण वेश-विन्यास है उनका !

**वसुगुप्त**—( **प्रसन्नता से** ) सचमुच, सम्राट् वीररस के प्रतीक हैं ! वह दौवारिक आया।

[ **दौवारिक का प्रवेश** ]

**दौवारिक**—महाराज की जय ! सम्राट् का आगमन हो रहा है ।

**वसुगुप्त**—हम लोग भी उनके स्वागत के लिए उत्सुक हैं । तुम जाओ बाहरी द्वार पर सम्राट् पर पुष्प-वर्षा हो ।

**दौवारिक**—जो आज्ञा । ( **प्रस्थान** )

**यशोवर्मन**—सम्राट् ने तक्षशिला में ग्रीक सैन्य-संचालन का जो कौशल देखा है, उस कौशल के बल पर तो वे समस्त भारत पर अपना साम्राज्य स्थापित कर सकते हैं । उन्होंने विदेशी राजनीति को स्वीकार कर किसी भविष्य कार्य-क्रम की नींव डाली है । यह बहुत कम लोग जानते हैं ।

**वसुगुप्त**—राजनीति के साथ नारी ! यही तुम्हारे कहने का तात्पर्य है ?

[ **दबी हुई सम्मिलित हँसी** ]

[ **सम्राट् की जय-ध्वनि के बाद सम्राट् चन्द्रगुप्त का कार्यान्तिक पुष्पदन्त के साथ प्रवेश** ]

**वसुगुप्त और यशोवर्मन**—( **सम्मिलित स्वर में** ) सम्राट् की जय !

**चन्द्रगुप्त**—समाहर्त्ता वसुगुप्त ! कुसुमपुरी का वैभव मैंने देखा । मुझे ऐसा ज्ञात होता है जैसे युद्ध की भैरवी ने काषाय वस्त्र धारण कर लिए हैं और वह संन्यासिनी हो गई है । नगर की शोभा मलिन है जैसे तलवार की झनकार वायु में विलीन हो गई है । नागरिकों का यह हुल्लास शृगालों का कोलाहल जैसा ज्ञात होता है जिसे हमें मनुष्यत्व देना है । नागरिकों से कहला दो कि वे अब अपने घर जावें ।

**वसुगुप्त**—जो आज्ञा, सम्राट् ।

[**प्रस्थान । धीरे-धीरे जनरव शांत हो जाता है ।**]

**चन्द्रगुप्त**—और अन्तपाल यशोवर्मन । जो तेज मैंने ग्रीक सैनिक के सेवकों

में देखा था वह कुसुमपुर के प्रतिष्ठित नागरिकों तक में नहीं है। यहाँ के व्यक्तियों में स्पष्ट बात कहने का साहस नहीं है। एक छल है, एक विडंबना है जो सोन नदी की भाँति कुसुमपुर को घेरे हुए है। उसे बंधन-मुक्त करो, यशोवर्मन।

**यशोवर्मन**—मुझे विश्वास है, सम्राट् ! आचार्य चाणक्य की नीति से कुसुमपुर एक कुसुम के समान सुन्दर और आपकी कीर्ति की भाँति निर्मल हो जायगा। ( **वसुगुप्त का प्रवेश** )

**चन्द्रगुप्त**— संभव है। आर्य चाणक्य की नीति ने कुसुमपुर की राजनीति में ऐसे चक्रव्यूह की रचना की है जिसमें अराजकता का पथ मृत्यु-दीवार पर जाकर समाप्त होता है। और उस मृत्यु-दीवार की नींव में जानते हो, क्या है ? समस्त नंदवंश चिर निद्रा में शयन कर रहा है।

**वसुगुप्त**—और उस नंदवंश की आँखों में विलासिता का मद अंतिम क्षणों तक रहा है।

**चन्द्रगुप्त**—मुझे इस बात का दुःख है किन्तु राजनीति कृपाण की धार का मार्ग है। जो व्यक्ति विलासिता का बोझ अपने सिर पर रख कर चलता है, वह उस कृपाण को निमंत्रण देता है कि वह उसके शरीर के दो टुकड़े कर दे। मैं आचार्य चाणक्य के चक्र-व्यूह की मृत्यु-दीवार को जीवन का प्रकाश-स्तम्भ बनाना चाहता हूँ।

**वसुगुप्त**—सम्राट् के बाहु-बल में और आचार्य चाणक्य की नीति में यह क्षमता है।

**चन्द्रगुप्त**—आचार्य चाणक्य की सहायता से जो कुछ भी अभी तक हुआ है, उनके प्रति नागरिकों को असंतोष तो नहीं होना चाहिए। तक्षशिला के अनुभव से मैं कुसुमपुर की सभी बाधाएँ दूर करना

चाहता हूँ। शासन का मापदण्ड प्रजा का सन्तोष और सुख होना चाहिए।

**यशोवर्मन**—सम्राट् का कथन सत्य है।

**चन्द्रगुप्त**—इसीलिए मैं एक महोत्सव का आयोजन करना चाहता हूँ, कौमुदी महोत्सव। शरद ऋतु की आज पूर्णिमा है। इसलिए समाहर्त्ता वसुगुप्त के प्रस्ताव के अनुसार मैंने मध्याह्न में इस निर्णय की घोषणा कर दी है। प्रकृति की इस चन्द्रमयी निर्मलता में जनता के हृदय की समस्त पाप-वासनाएं धुल जावें। कौमुदी महोत्सव, इस भाँति, कुसुमपुर का महान् राजनीतिक पर्व है।

**वसुगुप्त**—सम्राट्! कुसुमपुर के सिंह-द्वार ने अभी तक शृगालों का स्वागत किया है। आपके प्रवेश ने सिंह-द्वार का नाम सार्थक किया।

**चन्द्रगुप्त**—तुम प्रसन्न कर देने वाली बात कह सकते हो, वसुगुप्त! इसीलिए मैंने तुम्हें कुसुमपुर का नागरिक होने पर भी कर एकत्र करने वाले समाहर्त्ता का नवीन पद दिया है। तुम मधुर बातें कह कर अच्छी तरह 'कर' एकत्र कर सकते हो।

**वसुगुप्त**—यह सम्राट् की कृपा है।

**चन्द्रगुप्त**—फिर प्रजा का सन्तोष ही मेरे सुख का अग्रदूत है। ( **कार्यान्तिक पुष्पदन्त को संबोधित करते हुए** ) कार्यान्तिक पुष्पदन्त! कौमुदी महोत्सव के लिए कुसुमपुर के नागरिकों में उत्सुकता है?

**पुष्पदन्त**—सम्राट्! जिस समय से कौमुदी महोत्सव का संवाद नागरिकों के समीप पहुँचा है, उस समय से प्रत्येक नागरिक ने शूद्र महापद्मनंद की क्रूरता के उपसंहार में आपकी उदारता का 'भरत वाक्य' जोड़ दिया है। सम्राट् ने आर्य चाणक्य की सहायता से शस्त्र और पृथ्वी का उद्धार किया है। आपका कुसुमपुर में प्रवेश शस्त्र-

विजय का सूचक है जिसमें शास्त्र का संतोष और पृथ्वी का कल्याण है।

**यशोवर्मन**—प्रजा-वर्ग में से कुछ व्यक्ति नंदवंश के समर्थक हो सकते हैं और नंदवंश के विनाश से उनका क्षुब्ध होना स्वाभाविक है, इसलिए कौमुदी महोत्सव के संबंध में सम्राट् की घोषणा असंतोष को सुख और ऐश्वर्य से भरकर उसमें राजभक्ति की तरंग उठा सकती है। कौमुदी महोत्सव में कुसुमपुर के निवासी अपनी नगरी की शोभा देखकर अपने वैर-विरोध को भूल सकते हैं। नगरी का ऐश्वर्य देख कर उनके विचारों की दिशा मे परिवर्तन हो सकता है। किन्तु हमें यह उत्सव सतर्कता से देखना चाहिए।

**वसुगुप्त**—सतर्कता से देखने की ऐसी विशेष आवश्यकता नहीं है। नगरी का ऐश्वर्य जननी का ऐश्वर्य है। जननी का ऐश्वर्य देखकर किस पुत्र को प्रसन्नता न होगी? अपरिचित व्यक्ति की ओर से आयी हुई कल्याण-कामना भी जब रुचिकर ज्ञात होती है तो सम्राट्! आप जैसे उदारमना सम्राट् की ओर से की गई कल्याण-कामना नागरिकों के हृदय में सम्राट के प्रति भक्ति और श्रद्धा की मन्दाकिनी प्रवाहित किये बिना नहीं रहेगी।

**चन्द्रगुप्त**—ऐसा ही हो! (**कार्यान्तिक पुष्पदन्त से**) क्यों कार्यान्तिक पुष्पदन्त! कौमुदी महोत्सव का क्या प्रबन्ध किया गया है?

**पुष्पदन्त**—सम्राट्! कौमुदी महोत्सव के अवसर पर कुसुमपुर को सजाने में नायक ने अपनी सारी शक्ति लगा दी है। सोन और गंगा के संगम पर एक शत नौकाओं को सम्राट् के शुभ नाम के आकार मे सजा कर उन पर चालीस हाथ ऊपर आकाश-दीपों की व्यवस्था की गई है जिससे शरद-चन्द्रिका के हास के साथ सम्राट् का नाम

भी दीपों का आलोक-मण्डल बनाता हुआ नागरिकों के हृदयों में प्रवेश कर जावे।

**चन्द्रगुप्त**—यह मनोवैज्ञानिक चातुर्य है! और ?

**पुष्पदन्त**—नगर के काष्ठ-प्राचीर के चौंसठ द्वारों पर मंगल-कलशों की तरंगें सुसज्जित होंगी। दूर से ऐसा ज्ञात होगा कि कुसुमपुर प्रकाश का एक सरोवर है जिसमें चारों ओर दीप-किरणों की चौंसठ तरंगें प्रवाहित हो रही हैं!

**चन्द्रगुप्त**—यह सौन्दर्य-रचना सराहनीय है!

**पुष्पदन्त**—सम्राट्! प्राचीर पर जो पाँच सौ सत्तर अलिन्द हैं उनमें नगर की उतनी ही बालाएँ मणिजटित आभूषणों से अपने को सुसज्जित कर प्रकाश के आलोक में नृत्य करेंगी। उनके नृत्य में जब उनके रत्न प्रकाश की किरणों से आलोकित होंगे तो ज्ञात होगा जैसे किरणों के कमलों में प्रकाश-बिन्दुओं के भ्रमर क्रीड़ा कर रहे हैं।

**चन्द्रगुप्त**—यह तो बहुत सुन्दर होगा!

**पुष्पदन्त**—और सम्राट्! प्राचीर के चारों ओर जो सोन नदी की नहर है उसमें सहस्रों दीप-दान होंगे। ज्ञात होगा जैसे नगर के चारों ओर द्वीपों की आकाश-गंगा बहती जा रही है।

**वसुगुप्त**—सम्राट्! नायक पुरस्कार का अधिकारी है।

**चन्द्रगुप्त**—निस्सन्देह! और कार्यान्तिक पुष्पदन्त! तुम इस बात की घोषणा कर दो कि इस महोत्सव में भी जितने भी पण व्यय किये जायँ, वे राजकोष से व्यय न होकर मेरे 'चन्द्रकोष' से व्यय किये जायँ। यद्यपि इस उत्सव से प्रजावर्ग का मनोरंजन होगा तथापि इसका व्यय-भार मैं वहन करूँगा।

**वसुगुप्त**—यह सम्राट् की उदारता है। शूद्र राजा महापद्म तो प्रजा से

सहस्र-सहस्र पण लेकर उन्हें अपने विलास में व्यय करते थे और प्रजाजनों को उसी अवसर पर प्राण-दण्ड का पुरस्कार मिलता था। अपने को एक राष्ट्र घोषित करते हुए भी वे प्रजा-जनों के हृदयों में अणु मात्र भी स्थान नहीं बना सके थे। यही अवस्था उनके पुत्र धननंद के समय में थी।

**चन्द्रगुप्त**—वसुगुप्त ! अपने समारोह को इन अरुचिकर चर्चाओं से क्षत-विक्षत मत होने दो।

**वसुगुप्त**—मुझसे भूल हुई सम्राट् ! मैं क्षमा-प्रार्थी हूँ।

**चन्द्रगुप्त**—और कार्यान्तिक पुष्पदन्त ! प्रजा-भवनों का शृंगार कैसा होगा ?

**पुष्पदन्त**—सम्राट् ! प्रजा-भवनों की श्रेणी में विविध रंग के प्रकाश-तोरणों की व्यवस्था है। ऐसा ज्ञात होगा है जैसे रात्रि में सम्राट् की राजधानी में सप्त रंगों के इन्द्र-धनुष विविध नृत्य-मुद्राओं में सजे हैं।

**वसुगुप्त**—और इस अवसर पर सम्राट् के समक्ष नंद-वंश की राजनर्त्तकी के नृत्य की व्यवस्था भी तो होनी चाहिए ?

**यशोवर्मन**—यह समय तो नगरी की शोभा देखने का होगा, नर्त्तकी की शोभा देखने का नहीं।

**वसुगुप्त**—नगरी की शोभा देखने के अनन्तर सम्राट् विश्राम भी तो चाहेंगे ! विश्राम के क्षणों को निद्रालु बनाने के लिए राजनर्त्तकी के नृत्य की आवश्यकता भी होगी।

**चन्द्रगुप्त**—कार्यान्तिक पुष्पदन्त ! जाओ और नायक से कौमुदी महोत्सव की व्यवस्था शीघ्र करने के लिए कहो ! मेरे 'चन्द्रकोष' से उसे पाँच सहस्र पण के पुरस्कार की सूचना भी दो। कौमुदी महोत्सव के प्रारम्भ का संकेत मुझे तूर्य-नाद से मिलना चाहिए।

**पुष्पदन्त**—जो आज्ञा सम्राट् ! ( **प्रस्थान** )

**चन्द्रगुप्त**—नायक वास्तव में पुरस्कार का अधिकारी है। कुसुमपुर में ऐसी सौन्दर्य-रचना संभवतः पहली वार होगी ! क्यों वसुगुप्त ?

**वसुगुप्त**—निस्संदेह सम्राट् ! कुसुमपुर में रहते मेरा इतना जीवन व्यतीत हुआ, किन्तु महाराज नन्द ने विलासिता की थाह पाकर भी कभी अपनी नगरी का ऐसा शृंगार नहीं किया। यह श्रेय आपके ही शासन को होगा कि कुसुमपुर सचमुच सौन्दर्य का कुसुम बन सका।

**चन्द्रगुप्त**—वसुगुप्त ! तुम्हारी प्रशंसा अतिशयोक्तियों से भरी होती है। इतनी प्रशंसा सुनकर मुझे कभी-कभी सन्देह होने लगता है।

**वसुगुप्त**—किस संवंध में, सम्राट् ?

**चन्द्रगुप्त**—जो तुम कहते हो, उसकी यथार्थता में।

**वसुगुप्त**—सम्राट् परीक्षा करके देख लें। सत्य को सत्य कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं है, सम्राट् ! और फिर सम्राट् भी तो स्पष्ट-वक्ता हैं ! सम्राट् स्वयं इस बात को समझते होंगे।

**चन्द्रगुप्त**—चन्द्रगुप्त रणनीति के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझना चाहता, वसुगुप्त ! समाहर्त्ता के नवीन पद पर तुम्हारी नियुक्ति के संवंध में भी महामंत्री चाणक्य ही समझें। इस संबंध में उनसे पूछने का मुझे अवकाश ही नहीं मिला।

**यशोवर्मन**—आचार्य चाणक्य से पूछना बहुत आवश्यक था, सम्राट् !

**वसुगुप्त**—यशोवर्मन ! तुम्हें मेरा अपमान करने का कोई अधिकार नहीं। तुम मुझे युद्ध के लिए प्रेरित करते हो !

**यशोवर्मन**—सम्राट् के सेवक और आचार्य महामंत्री चाणक्य के शिष्य होने के नाते मैं द्वन्द्व-युद्ध के लिए प्रस्तुत हूँ, वसुगुप्त ! सम्राट् मैं द्वन्द्व की आज्ञा चाहता हूँ।

**चन्द्रगुप्त**—यशोवर्मन ! यह राजकक्ष है, समरांगण नहीं ? कौमुदी

महोत्सव को रक्त का अभिषेक नहीं चाहिए! तुम्हें भी इतने शीघ्र क्षुब्ध नहीं होना चाहिए।

**वसुगुप्त**—सम्राट् ! मैं चमा चाहता हूँ। किन्तु सत्य की रत्ता हो।

**चन्द्रगुप्त**—अवश्य होगी। और आज कौमुदी महोत्सव में तो सौन्दर्य की ही रत्ता होगी! हाँ, तुम राजनर्त्तकी के सम्बन्ध में क्या कह रहे थे?

**वसुगुप्त**—सेवक यही निवेदन कर रहा था, सम्राट्! कि सम्राट् के विश्राम-त्तणो को निद्रालु बनाने के लिए राजनर्त्तकी के नृत्य की आवश्यकता हो!

**चन्द्रगुप्त**—हाँ, होनी चाहिए।

**वसुगुप्त**—तो सम्राट्! मैंने उसकी सज्जा के लिए विशेष प्रबन्ध करा दिया है। वह राजप्रासाद के उत्तर-कत्त में वेश-भूषा से सुसज्जित है।

**चन्द्रगुप्त**—मेरी इच्छाओं के पूर्व ही कार्य की आयोजना करने वाले वसुगुप्त! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। कौमुदी महोत्सव में सदैव मेरे साथ रहोगे।

**वसुगुप्त**—यह मेरा सौभाग्य है, सम्राट्!

**चन्द्रगुप्त**—इस अवसर पर मुझे तत्तशिला का स्मरण हो आता है, उस तत्तशिला में जहाँ अठारह विषयों की शित्ता दी जाती थी। सहस्रों विद्यार्थी थे। वहाँ मेरे एक मित्र थे। तुमने भी उनका नाम सुना होगा। प्रसिद्ध संस्कृतज्ञ कात्यायन।

**वसुगुप्त**—वे तो व्याकरण-निर्माता पाणिनि के अभ्यास-सिद्ध शिष्य प्रसिद्ध हैं, सम्राट्!

**चन्द्रगुप्त**—हाँ, मैं आयुर्वेद, धनुर्वेद और शल्य सीखता था और कात्यायन वेद और व्याकरण। पाणिनि के व्याकरण सूत्र भाषा

और साहित्य के पूर्व ही चलते थे। उसी प्रकार तुम्हारे कार्य भी मेरी इच्छा के पूर्व ही हो जाते हैं।

**वसुगुप्त**—आप मुझे आदर देते हैं, प्रभु!

**चन्द्रगुप्त**—वहीं आचार्य चाणक्य से मैत्री हुई। नीति-निष्णात आर्य चाणक्य के समान बुद्धि और अन्तर्दृष्टि में आज समस्त आर्यावर्त्त में एक भी व्यक्ति नहीं है। यह मेरा सौभाग्य है कि वे मेरे आचार्य और महामंत्री हैं।

**यशोवर्मन**—सम्राट्! आचार्य चाणक्य की नीति अमर होने को क्षमता रखती है। राजनीति के साथ आयुर्वेद आदि में भी आचार्य चाणक्य निपुण हैं। चीन के एक राजकुमार अपनी नेत्र-पीड़ा की चिकित्सा कराने के लिए तक्षशिला आये थे। आचार्य चाणक्य ने एक सप्ताह की चिकित्सा में ही उन्हें स्पष्ट दृष्टि प्रदान की।

**चन्द्रगुप्त**—यह मैं जानता हूँ। उनकी राजनीति पर मुग्ध होकर तक्ष-शिला-शासक आम्भीक उन्हें तक्षशिला में ही रखना चाहता था। किन्तु उन्होंने वहाँ रहना स्वीकार नहीं किया। उन्होंने मुझे आश्वासन दिया था कि हम दोनों एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना करेंगे।

**यशोवर्मन**—और सम्राट्! उनका कथन अन्त में कितना सत्य निकला!

**वसुगुप्त**—सत्य क्यों न होता? मानवी हृदय को पहिचानने की अंतर्दृष्टि उनमें इतनी अधिक है कि वे एक ही क्षण में उनका सम्पूर्ण कार्य-क्रम स्पष्टतः बतला सकते हैं। वे कार्य करने की शैली जानते हैं। अपूर्व शक्ति, अपूर्व साहस और अपूर्व बुद्धि का विचित्र सम-न्वय उनमें हुआ है।

**यशोवर्मन**—वे नर-रत्न हैं, सम्राट्! आपके सहयोग से वे राज्य को

निष्कंटक बना देंगे।

**चन्द्रगुप्त**—मैं भी ऐसा ही अनुमान करता हूँ, किन्तु कौमुदी महोत्सव के सम्बन्ध में भी मैं आचार्य चाणक्य से परामर्श नहीं कर सका। संग्राम की उलझनों ने अवकाश ही नहीं दिया, किन्तु इसकी सूचना तो उन्हें अवश्य मिल चुकी होगी !

**वसुगुप्त**—वे आपकी इच्छा का समर्थन ही करेंगे। कौमुदी महोत्सव की उपयोगिता और सामयिकता तो वे अपनी अन्तर्दृष्टि से अवश्य ही देख चुके होंगे। तो अब समय अधिक हो रहा है। सम्राट्, राज-नर्त्तकी के नृत्य के सम्बन्ध में क्या निर्णय करते हैं ?

**चन्द्रगुप्त**—उसका क्या नाम है ?

**वसुगुप्त**—'अलका' सम्राट्। वह अनिन्द्य सुन्दरी और अद्वितीय नृत्यकला की साम्राज्ञी है।

**चन्द्रगुप्त**—मैं पहले उसे देखना चाहूँगा।

**वसुगुप्त**—अवश्य, सम्राट् ! वह राज-प्रासाद के उत्तर-कक्ष में वेश-भूषा से सुसज्जित है। आज्ञा हो तो उसे सम्राट् की सेवा में निरीक्षणार्थ उपस्थित करूँ।

**चन्द्रगुप्त**—ऐसा ही हो !

**वसुगुप्त**—जो आज्ञा। मैं उसे अभी सम्राट् की सेवा में उपस्थित करता हूँ।

[ **वसुगुप्त का प्रसन्नता के साथ प्रस्थान** ]

**चन्द्रगुप्त**—अन्तपाल यशोवर्मन ! आज राजनर्त्तकी अलका का नृत्य देख कर मैं कुसुमपुर की उत्कृष्ट नृत्य-कला का परिचय पा सकूँगा।

**यशोवर्मन**—मैं सम्राट् की सेवा में एक निवेदन करना चाहता हूँ।

**चन्द्रगुप्त**—निवेदन करो।

**यशोवर्मन**—विलासी नंदवंश की राजनीति में यह राजनर्त्तकी अलका है।

**चन्द्रगुप्त**—यह राजनर्त्तकी अलका ?

**यशोवर्मन**—हाँ, सम्राट् ! राजनर्त्तकी के जीवन का यह सबसे बड़ा अभिशाप है कि वह नंदवंश के विनाश का कारण बनी और इस तरह वह निर्दोष नहीं कही जा सकती ।

**चन्द्रगुप्त**—निर्दोष ? वह सब प्रकार से दोषी कही जानी चाहिए । गौतम ने अहल्या को शाप क्यों दिया ? क्या अहल्या ने अपने सदाचार से अपने सौन्दर्य की रक्षा नहीं की थी फिर क्यों उसने इन्द्र को नहीं पहिचाना ? शची का सौभाग्य अप्सराओं को बाँटनेवाले इन्द्र की लालसा का भी परिचय चाहिए ? वैसे ही क्या अलका महाराज नंद को नहीं पहचान सकी ? क्या महाराज नंद की आँखों में उसके अंगराग की अरुण रेखाएँ विद्युत बन कर नहीं चमक उठीं ? यशोवर्मन ! तुम जानते हो आकाश की उल्का प्रकाश से ओतप्रोत रहती है, किन्तु जब वह उदित होती है तो समस्त संसार में अमंगल की आशंका क्यों होती है ?

**यशोवर्मन**—जब सम्राट् ऐसा सोचते हैं तो उसके नृत्य की अनुमति क्यों दे रहे हैं ?

**चन्द्रगुप्त**—केवल कौमुदो महोत्सव को शोभा-सम्पन्न करने के लिए । और कुसुमपुर की जनता के मन में यह संतोष उत्पन्न करने के लिए कि सम्राट् चन्द्रगुप्त ने महाराज नंद के आश्रितों के साथ सहानुभूति का व्यवहार किया । तुम जानते हो, यशोवर्मन ! महाराज नंद के लिए जो विष था, उसे मै अमृत में परिणत करना चाहता हूँ ।

**यशोवर्मन**—सम्राट् तक्षशिला के स्नातक हैं । सम्राट् जानते हैं कि राजनीति में राजनर्त्तकी का क्या स्थान है !

**चन्द्रगुप्त**—वही स्थान जो कृपाण की धार को ढंकने के लिए म्यान का

होता है। राजनीति रूपी कठोर कृपाण का आतंक छिपाने के लिए राजनर्त्तकी रूपी आवरण आवश्यक है किन्तु वह आवरण कृपाण की धार को कुंठित नहीं करता। राजनीति की परुषता प्रजा की दृष्टि से ओझल रहना आवश्यक है।

**यशोवर्मन**—सत्य है, सम्राट् !

**चन्द्रगुप्त**—किन्तु महाराज नंद की राजनीति राजनर्त्तकी से कुंठित हो गई। तलवार ही म्यान वनकर रह गई, मैं राजनर्त्तकी को म्यान वनाकर रखना चाहता हूँ। (रुककर) क्या कारण है, मुझे कौमुदी महोत्सव के प्रारम्भ की सूचना तूर्य द्वारा नहीं सुन पड़ी ?

[ **वसुगुप्त का प्रवेश** ]

**वसुगुप्त**—सम्राट् ! राजनर्त्तकी सेवा में उपस्थित है।

**चन्द्रगुप्त**—उपस्थित करो। वह मेरे कक्ष के वातावरण को संगीत और नृत्य से मुखरित करे।

**वसुगुप्त**—जो आज्ञा, सम्राट् ! [ **प्रस्थान** ]

**चन्द्रगुप्त**—अंतपाल यशोवर्मन ! नृत्य और संगीत कौमुदी महोत्सव की वह प्रस्तावना है जिसमें उमंग की रूपरेखा मंगल के रंग में सुसज्जित होती है। नृत्य मेरी मनोहर भावनाएँ हैं जिनमें सुख का रहस्य जागता है !

[ **वसुगुप्त के साथ राजनर्त्तकी अलका का प्रवेश** ]

**अलका**—सम्राट् की सेवा में अलका का प्रणाम स्वीकार हो !

[ **अत्यन्त सुकुमार भाव से प्रणाम करती है** ]

**चन्द्रगुप्त**—(हाथ उठाकर) कुसुमपुर की श्री और शोभा की अधिवासिनी वनो। ( **यशोवर्मन से** ) यशोवर्मन ! तुम जा सकते हो।

**यशोवर्मन**—जो आज्ञा सम्राट् ! मेरा निवेदन है कि इस नृत्य-समारोह में आचार्य चाणक्य भी सम्मिलित हों।

**चन्द्रगुप्त**—( **हँसकर** ) आचार्य चाणक्य ? राजनीति को कविता से मिलाना चाहते हो ? मुझे कोई आपत्ति नहीं। यदि चाहो तो उन्हें यहाँ भेज सकते हो। वे भी राजनीति के कुचक्रों से थक गए होंगे, उन्हें भी विश्राम की आवश्यकता होगी। राजनीति का मस्तिष्क आज नृत्य की कविता से हृदय की सहानुभूति प्राप्त करे।

**वसुगुप्त**—जो आज्ञा, सम्राट् ! [ **प्रस्थान** ]

**चन्द्रगुप्त**—राजनीति और कविता ! (**राजनर्त्तकी से**) क्यों राजनर्त्तकी ! तुम राजनीति की ताल पर नृत्य कर सकती हो ?

**अलका**—सम्राट् ! अभी तक तो राजनीति ही मेरे नृत्य की ताल थी किन्तु मैंने इसकी ओर कभी ध्यान दिया ही नहीं। राजनर्त्तकी का राजनीति से क्या संबंध, सम्राट् ! वह तो राज्य की अनुचरी मात्र है।

**चन्द्रगुप्त**—( **हँसकर** ) इन्हीं छद्मवेशी शब्दों में अनुचरी स्वामिनी बन जाती है, राजनर्त्तकी ! महाराज नंद तुम पर मोहित थे या तुम महाराज नंद पर मोहित थीं ?

**अलका**—सम्राट्, मुझे क्षमा करें। सच्ची नारी मोहित नहीं होना चाहती। वह आत्म-समर्पण करना चाहती है। जो नारी मोहित होती है, वह अपने रूप का व्यापार करती है, हृदय का समर्पण नहीं।

**चन्द्रगुप्त**—तुम किस व्यापार में विश्वास करती हो ? रूप के व्यापार में या हृदय के व्यापार में ?

**अलका**—हृदय का व्यापार नहीं होता, सम्राट् !

**चन्द्रगुप्त**—तो हृदय का समर्पण सही !

**अलका**—उस समर्पण की कोई भाषा नहीं होती, सम्राट् ! जिस समर्पण की भाषा होती है, वह व्यापार बन जाता है और हृदय का व्यापार कभी नहीं होता !

**चन्द्रगुप्त**—पर महाराज नंद तो हृदय का व्यापार करते थे ! और उस व्यापार में वे अपना सारा साम्राज्य हार गए ! क्या यह बात सत्य नहीं है ?

**अलका**—सत्य है, सम्राट् ! किन्तु पुरुष तो व्यापारी है, वह अपने व्यापार में सब कुछ लुटा सकता है !

**चन्द्रगुप्त**—पुरुषों के प्रति तुम्हारी बहुत हीन दृष्टि है, राजनर्त्तकी !

**अलका**—उसी प्रकार जैसे पुरुषों की नारियों के प्रति हीन दृष्टि है, सम्राट् ! वे नारी को विलासिता की सामग्री बनाकर छोड़ देते हैं !

**चन्द्रगुप्त**—किन्तु कोई नारी बलपूर्वक विलासिता की सामग्री नहीं बनायी जा सकती। वह अपनी विजय के लिए विलासिता की सामग्री बनती है और दोष पुरुषों को देती है !

**अलका**—सम्राट् ! राजनीति के आचार्य हैं और सेविका राजनीति के पैरों से कुचली हुई धूल है, सम्राट् ! मैं क्या निवेदन कर सकती हूँ !

**चन्द्रगुप्त**—किन्तु राजनर्त्तकी ! धूल भी सिर पर चढ़ सकती है !

**अलका**—हाँ, सम्राट् ! जब वह पैरों से ठुकरायी जाती है। किन्तु सेविका का यह अधिकार नहीं।

**चन्द्रगुप्त**—अधिकार नहीं, राजनर्त्तकी ! यह तो उसकी गति है। गति में अधिकार का आडम्बर नहीं होता, उसमें शक्ति की विद्युत होती है। और तुममें वह शक्ति की विद्युत है जिसने आकाश का हृदय चीरते हुए तड़प कर नंद जैसे विशाल शाल वृक्ष को धराशायी कर दिया।

**अलका**—तब तो मुझे विद्युत की भाँति ही पृथ्वी में विलीन हो जाना चाहिए, सम्राट् !

**चन्द्रगुप्त**—किन्तु राजनर्त्तकी महासती सीता नहीं बन सकती जो भूमि

में विलीन हो जावे। राजनर्त्तकी को राज्य का शृंगार करना पड़ता है।

**अलका**—वह मेरे जीवन का अभिशाप है, सम्राट् ऐसे फूलों का क्या सौन्दर्य जो किसी शव पर बिखेर दिये जाते हैं। आज आपके चरणों पर गिर कर मैं अपने जीवन से मुक्त हो जाऊँगी।

**चन्द्रगुप्त**—निराशा की बातें मत करो, राजनर्त्तकी! तुम जानती हो आज कौमुदी महोत्सव है। कुसुमपुर की जनता मेरे साथ आनन्द-विभोर हो जाना चाहती है। तुम्हें मधुर गायन से वातावरण को गुंजरित करना है।

**अलका**—सम्राट् की जो आज्ञा, किन्तु आज से मैं राजनर्त्तकी का पद त्याग दूँगी और आपके चरणों की धूल में शयन कर अमर हो जाऊँगी।

**चन्द्रगुप्त**—राजनर्त्तकी! तुम्हारा यह वार्त्तालाप महाराज नंद से नहीं हो रहा, सैनिक चन्द्रगुप्त से हो रहा है। मुझे अपने चरणों की धूल वीरों की परंपरा के लिए छोड़नी है, राजनर्त्तकियों की परंपरा के लिए नहीं। किन्तु मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। कुसुमपुर के नागरिकों को नृत्य-शिक्षा दो और उसका मंगलाचरण आज कौमुदी महोत्सव में तुम्हारे नृत्य से हो। नृत्य प्रारम्भ करो जिसमें कुसुमपुर का वायुमंडल तुम्हारे नूपुरों के स्वरों का वाहक बन कर कौमुदी महोत्सव का निमंत्रण प्रत्येक दिशा में पहुँचा दे।

**वसुगुप्त**—अलका! तुम्हें कुसुमपुर के आदर्श नृत्य का परिचय सम्राट् को देना है। इस समय तुम्हें ऐसा नृत्य करना है कि सम्राट् नृत्य-विभोर होकर अपने जीवन के समस्त विषाद को भूल जायँ!

**चन्द्रगुप्त**—मुझे तो कोई विषाद नहीं है, वसुगुप्त!

**वसुगुप्त**—सम्राट् को विषाद ही क्या हो सकता है ! सम्राट् तो सैनिक हैं । सैनिकों को विषाद कैसा ! मैं तो यह कहना चाहता था कि कुसुमपुर के नागरिकों के हितचिन्तन में लगा हुआ आपका मन जो थका हुआ है....

**चन्द्रगुप्त**—ठीक है, राजनर्त्तकी, नृत्य प्रारम्भ हो !

**अलका**—जो आज्ञा सम्राट् की !

**[प्रणाम कर नृत्य प्रारम्भ करती है। कुछ देर नृत्य करने के बाद मधुर कंठ से गीत गाती है । ]**

आज मधुमय कुसुमों के द्वार—
द्वार पर है अलि का गुंजन !
सजीली थी मधुवन की गली,
समीरन धीरे-धीरे चली,
फूल के पास खिल गई कली,
और नभ से संध्या ने उतर,
लगाया आँखों में अंजन !
आज मधुमय कुसुमों के द्वार—
द्वार पर है अलि का गुंजन ।

**[ थोड़ी देर तक नृत्य होता रहता है । अंत में सम्राट् के मुख से प्रशंसा के शब्द निकलते हैं । ]**

**चन्द्रगुप्त**—बहुत सुन्दर, राजनर्त्तकी अलका ! तुम जितनी सुन्दर हो, उतना ही सुन्दर तुम्हारा नृत्य है । यह लो अपना पुरस्कार !

**[ चन्द्रगुप्त अपने गले से मोतियों की माला उतारते हैं । सहसा आचार्य चाणक्य का प्रवेश । ]**

**चाणक्य**—पुरस्कार नहीं दिया जावेगा, सम्राट् !

**चन्द्रगुप्त**—**(आश्चर्य से रुककर)** महामंत्री, चाणक्य !

**चाणक्य**—सम्राट् ! आग बुझ जाने पर भी आग की राख गरम रहती है, उसे तुम हाथों में नहीं उठा सकते। तुम इतने थोड़े समय में कैसे मान बैठे कि कुसुमपर की आग इतनी शीतल भस्म हो गई है कि उसमें कुसुमों की क्यारियाँ सजायी जायँ ?

**चन्द्रगुप्त**—महामंत्री, चन्द्रगुप्त ने कुसुमों की क्यारियों में नहीं, समरांगण में अपने जीवन का वैभव देखा है, उसने नूपुरों की झंकार में नहीं, तलवारों की झंकार में अपने जीवन का संगीत गाया है। आपने यह कैसे समझ लिया कि चन्द्रगुप्त के क्षणिक मनोविनोद में उसका समरांगण कुसुम की क्यारी बन गया ? आपको यह समझना चाहिए कि यह क्षणिक विश्राम भविष्य के युद्ध की भूमिका है।

**चाणक्य**—और सम्राट् चन्द्रगुप्त ! यदि इस क्षणिक विश्राम में ही जीवन का अंत हो गया तो ? तुम्हारे भविष्य के वैभव का समरांगण ही कहीं तुम्हारे शव का श्मशान बन गया तो इस विश्राम के क्षण को तुम क्या कहोगे ?

**चन्द्रगुप्त**—आर्य, विश्राम के क्षणों की सीमा क्या और कितनी है, वह जानने के लिए चन्द्रगुप्त के पास पर्याप्त विवेक........

**चाणक्य**—( **बीच में ही** ) नहीं है। यही समझकर मैं अपने साथ सैनिक लाया हूँ। ( **पुकार कर** ) सैनिको ! राजनर्त्तकी और समाहर्त्ता को अपने नियंत्रण में लो !

[ **सैनिक नेपथ्य से निकल कर आगे बढ़ते हैं।** ]

**वसुगुप्त**—सम्राट् राजमर्यादा भंग हो रही है, रक्षा कीजिए !

**चन्द्रगुप्त**—महामंत्री, वसुगुप्त अपने नवीन समाहर्त्ता हैं !

**चाणक्य**—किन्तु इस समय वे बन्दी हैं। सैनिकों, दोनों को नियंत्रण में लो। यदि कोई विरोध हो तो बल-प्रयोग हो !

**वसुगुप्त**—( **करुण स्वर में** ) मैं निर्दोष हूँ, मैं निर्दोष हूँ, सम्राट् ! महामंत्री ! मैं निर्दोष हूँ ।

**अलका**—( **अत्यन्त करुण स्वर में** ) मेरा स्पर्श कोई न करे ! मैं नारी हूँ । नारी की मर्यादा सुरक्षित हो ! सम्राट् । नारी की मर्यादा सुरक्षित हो ! मैं स्वयं नियंत्रण में होती हूँ । हाय, नारी नियंत्रण में, सदैव नियंत्रण में, जीवन भर नियंत्रण में । ( **विह्वल हो जाती है ।** )

**चन्द्रगुप्त**—( **आगे बढ़कर** ) आर्य चाणक्य !....

**चाणक्य**—कुछ मत कहो इस समय, सम्राट् चन्द्रगुप्त ! चाणक्य अपना कर्त्तव्य अच्छी तरह समझता है । सैनिको ! दोनों को नियंत्रण में लेकर दूसरे कक्ष में ले जाओ ।

**सैनिक**—जो आज्ञा । [ **दोनों को बन्दी कर सैनिकों का प्रस्थान** ]

**चन्द्रगुप्त**—यह राजमर्यादा की सबसे बड़ी अवहेलना है, महामंत्री ! जिस राजमर्यादा की पूजा हमने रक्त चढ़ा कर की है, उसी राजमर्यादा को तुच्छ सैनिक अपने पैरों की धूल से कलंकित करें ! यह कैसी राजनीति है ! आज कौमुदी महोत्सव के अवसर पर........

**चाणक्य**—कौमुदी महोत्सव ?

**चन्द्रगुप्त**—हाँ, कौमुदी महोत्सव ? क्या आपने मेरी घोषणा नहीं सुनी ?

**चाणक्य**—वह सुनने योग्य नहीं थी !

**चन्द्रगुप्त**—आप राजमर्यादा का इतना अपमान कैसे कर रहे हैं, महामंत्री ! कौमुदी महोत्सव की घोषणा कुसुमपुर में मेरी प्रथम राजघोषणा है ।

**चाणक्य**—वह राजघोषणा प्रारम्भ होने से पूर्व ही समाप्त हो गई !

**चन्द्रगुप्त**—(**आश्चर्य से**) समाप्त हो गई ! किसने यह साहस किया ?

**चाणक्य**—मैंने, आर्य चाणक्य ने ।

**चन्द्रगुप्त**—इसीलिए मुझे घोषणा का तूर्य नहीं सुन पड़ा । तो आपने कौमुदी महोत्सव की घोषणा नहीं होने दी !

**चाणक्य**—नहीं । मैंने ही घोषणा नहीं होने दी ।

**चन्द्रगुप्त**—मैं कारण जानना चाहता हूँ ।

**चाणक्य**—मैं कारण नहीं बतला सकता ।

**चन्द्रगुप्त**—सम्राट् कौन है, चन्द्रगुप्त या चाणक्य ?

**चाणक्य**—चन्द्रगुप्त ।

**चन्द्रगुप्त**—फिर सम्राट् चन्द्रगुप्त की आज्ञा की अवहेलना क्यों हो रही है ?

**चाणक्य**—इसलिए कि वह आज्ञा किसी मनचले बालक के हठ की तरह है ।

**चन्द्रगुप्त**—फिर भी उसकी रक्षा चाहिये ।

**चाणक्य**—नहीं, बालक आग पकड़ना चाहता है । उसे आग पकड़ने की सुविधा नहीं दी जा सकेगी ।

**चन्द्रगुप्त**—यह तुम्हारा गर्व है, महामंत्री !

**चाणक्य**—यह तुम्हारा अज्ञान है, सम्राट् !

**चन्द्रगुप्त**—( क्रुद्ध होकर ) महामंत्री ! कुसुमपुर की विजय में तुम्हारा हाथ रहा है, तो क्या इतनी छोटी-सी विजय ने ही तुम्हारे गर्व की चिनगारी को फूँक मारकर लपट में परिवर्तित कर दिया ! यह गर्व उस चिता की ज्वाला है जिसमें तुम्हारी राजनीति जल कर भस्म हो सकती है ।

**चाणक्य**—मुझे इसकी चिन्ता नहीं है, सम्राट् ! गर्व मेरे अंतःकरण का अधिकार है । वह राज्य से अनुशासित नहीं है । किन्तु मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि चाणक्य के गर्व की चिनगारी स्वर्ग

के राज्य को प्राप्त करके भी लपट नहीं बनेगी ! हाँ, अपमान के हल्के झोंके से ही वह दावाग्नि बन कर तुम्हारे वैभव के नंदन वन को क्षण भर में भस्म कर सकती है। क्या तुम नंदवंश के विनाश की पुनरावृत्ति देखना चाहते हो ?

**चन्द्रगुप्त**—आर्य चाणक्य ! सैनिक चन्द्रगुप्त विलासी नंद नहीं है जो पतन के गर्त्त के मुख पर खड़ा होकर हलकी-सी राजनीति के धक्के की प्रतीक्षा करे। मौर्य चन्द्रगुप्त हिमाद्रि की तरह सुदृढ़ है जिसे महामंत्री चाणक्य की कुटिल राजनीति-रूपी आँधियों के झोंके एक कण भर भी विचलित नहीं कर सकते।

**चाणक्य**—मौर्य चन्द्रगुप्त ! क्षत्रियत्व क्या इतना पतित हो गया कि वह ब्राह्मणत्व पर पदाघात करे ? क्या तुम जानते हो कि मौर्य हिमाद्रि की भाँति सुदृढ़ कैसे हो पाया ? उसकी सुदृढ़ता को धारण करने वाली पृथ्वी इसी ब्राह्मण की राजनीति है। यदि यह शक्ति एक क्षण के लिए अलग हो जाय तो हिमाद्रि इतने वेग से नीचे गिरेगा कि वह अपने साथ समीपवर्त्ती वृक्षों को भी लेकर समुद्र-तल में चला जायगा और तब समुद्र की तरंगें इसी ब्राह्मण के चरणों में लोटने के लिए आवेंगी और यह ब्राह्मण उस ओर देखेगा भी नहीं।

**चन्द्रगुप्त**—आर्य चाणक्य ! संसार में जितने प्रतापशाली राज्य हुए हैं क्या वे सब महामंत्री चाणक्य की राजनीति के बल पर ही हुए हैं ? और जहाँ महामंत्री चाणक्य नहीं हैं, वहाँ किसी राज्य की स्थापना भी नहीं है ? क्या सारे राज्यों की शक्ति महामंत्री चाणक्य की शक्ति से ही भिक्षा माँग कर संसार में चली है और क्या चन्द्रगुप्त इतना हीन है कि उस शक्ति के बल पर विजय प्राप्त करता है ? तब जाने दो ऐसी शक्ति को। उसे मैं आज ही

दूर करता हूँ। महामंत्री चाणक्य ! तुम महामंत्री पद से मुक्त किये गये।

**चाणक्य**—मौर्य ! यह लो अपना शस्त्र ( **फेंक देते हैं** ) यह कलंक इसी समय दूर करता हूँ। राजमंत्री राक्षस की राजनीति के कुचक्र में आनेवाले चन्द्रगुप्त ! क्या मैं अपनी शिखा खोलकर विनाश की फिर प्रतिज्ञा करूँ ? जिस ब्राह्मण की शिखा-सर्पिणी ने नंदवंश को एक ही दंशन में समाप्त कर दिया, क्या मौर्य भी उस सर्पिणी पर हाथ रखना चाहता है ? जिस चन्द्रगुप्त को अपना आत्मीय समझ कर कुसुमपुर के सिंहासन पर आरूढ़ कराया उसी चन्द्रगुप्त के विनाश से क्या श्मशान को सुसज्जित करूँ ! वाह रे ब्राह्मण ! ब्रह्म-ज्ञान में जीवित रहनेवाला आज राज्य के कुचक्रों से लांछित हो रहा है। आज अपने सृष्टि-सागर का विष मैं ही पी रहा हूँ। किन्तु चन्द्रगुप्त ! मुझमें कालकूट को भी पी जानेवाले नीलकंठ की शक्ति है ! समझते हो ?

**चन्द्रगुप्त**—समझता हूँ, चाणक्य ! ( **शस्त्र उठाते हुए** ) यह शस्त्र अब मेरे अधिकार में है। आज से मैं समस्त राजनीति अपने बाहु-बल में केन्द्रित कर कुसुमपुर का शासन करूँगा और विद्रोह के सर्पों को जलाने के लिए महायज्ञ करूँगा।

**चाणक्य**—करो, इसी समय से करो वह महायज्ञ और उसमें तुम भी विनष्ट हो जाओ ! आज कौमुदी महोत्सव करो और अपने नवीन समाहर्त्ता और राजनर्त्तकी के रूप में अपनी मृत्यु को निमंत्रण दो।

**चन्द्रगुप्त**—मेरे आनंदोत्सव से ईर्ष्या करने वाले चाणक्य ! तुम यही कहो ! ब्राह्मण को इन ऐश्वर्यों से द्वेष होना स्वाभाविक है।

**चाणक्य**—आत्म-चिन्तन में जो ऐश्वर्य है, क्षत्रिय ! वह इन तुच्छ भड़कीले वैभवों में नहीं है और वह वैभव जो अपने साथ

मृत्यु लिये हुए है ! शत्रु के गुप्तचरों और विषकन्याओं पर विश्वास करने वाला सम्राट् एक ही पदक्षेप में मृत्यु का आलिंगन उसी भाँति करता है जैसे एक ही उछाल में पतिंगा दीप-शिखा के भीतर जलती हुई मृत्यु में भस्म हो जाता है। तुम भी भस्म हो जाओ और अपने वैभव का जला हुआ काला धुआँ अपने पीछे छोड़ जाओ।

**चन्द्रगुप्त**—अपनी राजनीति में अविश्वासी बने हुए, चाणक्य ! तुम प्रत्येक व्यक्ति को गुप्तचर और प्रत्येक नारी को विषकन्या समझ सकते हो ! राज्य-सीमा की रेखा पर रेंगती हुई तुम्हारी आँखों की पुतलियाँ काले कीड़े की तरह केवल निरीह जीवों की हिंसा करना ही जानती हैं। महामंत्री की विशेषता....

**चाणक्य**—महामंत्री मत कहो, मौर्य ! मैं अब तुम्हारा महामंत्री नहीं हूँ। मैं भी तुम्हें सम्राट् नहीं कह रहा हूँ। मैं केवल एक ब्राह्मण हूँ, वह ब्राह्मण जिसकी शिखा बहुत दिनों तक खुली रही और यह तभी बाँधी गई जब उसने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार नंदवंश का विनाश कर दिया। अब उसके सामने केवल दो ही मार्ग हैं। या तो वह पुनः अपनी शिखा खोल कर मौर्य-वंश के विनाश की प्रतिज्ञा करे या क्षितिज की भाँति अपनी बाहुओं को फैला कर नक्षत्रों के नेत्रों से विश्वंभरा पृथ्वी को अपनी करुणा और शान्ति से सींचे। तब समस्त सृष्टि में उसका राज्य होगा, पशु-पक्षी उसके सहचर होंगे और वायु झकोरों में झूम कर वह सामगान करता हुआ तुम्हें क्षमा करेगा।

**चन्द्रगुप्त**—यह तपोवन नहीं है, आर्य ! और चन्द्रगुप्त क्षमा का न तो पात्र है, न अभिलाषी। अब तपोवन के होमकुण्ड में हिंसा करो या कुश-कंटक चरनेवाले हरिणों को क्षमा करो, किन्तु जाने

के पूर्व अपने नवीन समाहर्त्ता वसुगुप्त तथा राजनर्त्तकी अलका पर लगाये हुए लांछन का निराकरण करना होगा ! और यदि यह लांछन असत्य निकला तो राज्य का दण्ड-विधान अपराधी को पहचानता है । यह मेरा अन्तिम आदेश है ।

**चाणक्य**—अपने नवीन महामंत्री को प्रथम आदेश दो, मौर्य ! मैं तुम्हारे समक्ष सत्य के उद्‌घाटन के लिए वाध्य नहीं हूँ ।

**चन्द्रगुप्त**—जो ब्राह्मण सत्य के उद्‌घाटन को अपना धर्म न समझे, उसे मैं किस संज्ञा से संवोधित करूँ ?

**चाणक्य**—सत्य का उद्‌घाटन मैं अपनी इच्छा से कर सकता हूँ । किन्तु इस उद्‌घाटन के अनन्तर मैं एक क्षण भी यहाँ नहीं ठहर सकूँगा। यह वातावरण अभिशाप वन कर मेरे रोम-रोम में तीव्र प्रतिहिंसा की ज्वाला उत्पन्न कर रहा है ।

**चन्द्रगुप्त**—सर्वप्रथम प्रमाण उपस्थित किया जाय !

**चाणक्य**—( पुकार कर ) सैनिक !

[ **सैनिक का प्रवेश** ]

**सैनिक**—आज्ञा, महाराज !

**चाणक्य**—समाहर्त्ता वसुगुप्त और राजनर्त्तकी अलका को उपस्थित करो ।

**सैनिक**—जो आज्ञा । [ **प्रस्थान** ]

**चाणक्य**—चन्द्रगुप्त ! प्रजा के संस्कार जल्दी नहीं छूटते । इस समय भी महाराज नंद से सहानुभूति रखनेवाले व्यक्ति कुसुमपुर में विद्रोह की लपटों के स्फुलिंग वने हुए हैं । राजमंत्री राक्षस कुसुमपुर के वाहर रहकर भी कुसुमपुर के नागरिकों में अविश्वास के वीजों पर अपनी नीति का जल सींच रहा है । कुसुमपुर में समस्त कार्यों में षड्‌यंत्रों का जाल जयकार के छद्मवेश में चारों

ओर घूम रहा है और तुम कौमुदी महोत्सव में असावधान होकर विषकन्या का स्पर्श करना चाहते हो ? चन्द्रगुप्त ! मैं अपने निस्पृह नेत्रों से सब कुछ देख रहा हूँ....और तुम देख कर भी कौमुदी महोत्सव की शीतलता में हलाहल पान करने जा रहे हो ! फर यही कहना चाहता हूँ.......

[ **सैनिक का वसुगुप्त और अलका के साथ प्रवेश** ]

अच्छा ! समाहर्त्ता वसुगुप्त और राजनर्त्तकी अलका ! सैनिको ! तुम जाकर द्वार पर अपना स्थान ग्रहण करो। ( **सैनिकों का प्रणाम कर प्रस्थान। वसुगुप्त को सम्बोधित करते हुए** ) समाहर्त्ता वसुगुप्त ! मुझे दुःख है कि मैंने तुम्हें सैनिकों के नियंत्रण में रखा। मैं जानता हूँ कि तुम सम्राट् चन्द्रगुप्त के विश्वासपात्र नवीन समाहर्त्ता हो !

**वसुगुप्त**—मैं समाहर्त्ता नहीं हूँ, महामंत्री ! यदि समाहर्त्ता होता तो सम्राट् समाहर्त्ता का अपमान इस भाँति नहीं देख सकते थे !

**अलका**—( **करुण स्वर में** ) और नारी का अपमान ! आज तक कुसुमपुर के राजकक्ष में नहीं हुआ ! मैं अपमानित हुई हूँ, सम्राट् !

**चन्द्रगुप्त**—( **दृढ़ता से** ) निस्सन्देह ! मैं दोनों के अपमान का प्रतिकार करूँगा।

**चाणक्य**—( **वसुगुप्त से** ) सम्राट् से तुमने आश्वासन पा लिया है, समाहर्त्ता और ( **राजनर्त्तकी से** ) राजनर्त्तकी ! तुम्हें भी सम्राट् के बाहुओं की शीतल छाया प्राप्त हो चुकी है, किन्तु ( **वसुगुप्त से** ) मैं जानना चाहता हूँ समाहर्त्ता ! राजनर्त्तकी से तुम्हारा परिचय कितना पुराना है ?

**वसुगुप्त**—मैं राजनर्त्तकी का नाम भी नहीं जानता, महामंत्री ! मुझे तो

*कौमुदी महोत्सव की घोषणा के कुछ क्षण पूर्व राजनर्त्तकी का परिचय मिला था।*

**चाणक्य**—तुम कुसुमपुर के निवासी हो, समाहर्त्ता !

**वसुगुप्त**—कुसुमपुर के एक ग्राम अमरावती का निवासी हूँ, मैं वहाँ का अंतपाल था।

**चाणक्य**—तो तुम कुसुमपुर में कब से निवास करते हो ?

**वसुगुप्त**—मैंने कहा न, महामंत्री ! मैं कुसुमपुर का नहीं, अमरावती का निवासी हूँ।

**चाणक्य**—सम्राट् चन्द्रगुप्त ने तुम्हें कुसुमपुर में पाया या अमरावती में ? उन्होंने तुम्हें अपना समाहर्त्ता बनाने में तो कुसुमपुर की नागरिकता को ही ध्यान में रखा होगा ?

**वसुगुप्त**—मैं कुसुमपुर में निवास नहीं करता, महामंत्री ! मैं अमरावतो से कुसुमपुर आया अवश्य करता हूँ।

**चाणक्य**—वर्ष में कितनी वार आया करते हो ?

**वसुगुप्त**—मैं कह नहीं सकता !

**चाणक्य**—( कठोर स्वर में ) प्रश्न की अवहेलना नहीं हो सकती ! ठीक उत्तर दो।

**वसुगुप्त**—महाराज नंद के प्रमुख उत्सवों में आया करता था।

**चाणक्य**—गत वर्ष वसंतोत्सव में सम्मिलित हुए थे ? अमरावती के अंतपाल !

**वसुगुप्त**—हाँ, महामंत्री !

**चाणक्य**—वसंतोत्सव में राजनर्त्तकी अलका ने नृत्य किया था। तुमने उसे देखा था ?

**वसुगुप्त**—हाँ, महामंत्री !

**चाणक्य**—तब तुम अलका के नाम से परिचित हो !

**वसुगुप्त**—हाँ, महामंत्री !

**चाणक्य**—अभी तुमने कहा कि मैं अलका का नाम भी नहीं जानता और कहा कि कौमुदी महोत्सव के एक क्षण पूर्व राजनर्त्तकी का परिचय मिला।

**वसुगुप्त**—मैं राजनीति की बातें प्रकट नहीं किया करता !

**चाणक्य**—( हँसकर ) बड़े राजनीतिज्ञ हो ! अच्छा, राजनीति की बातें मत कहो। सीधा उत्तर दो, तुम राजमंत्री राक्षस के गुप्तचर कब हुए ?

**वसुगुप्त**—महामंत्री ! मैं दुष्ट राक्षस को जानता भी नहीं हूँ।

**चाणक्य**—उसी तरह जिस तरह तुम राजनर्त्तकी को नहीं जानते थे ?

**वसुगुप्त**—( चंद्रगुप्त से ) सम्राट् ! मेरे सम्मान की रक्षा कीजिए !

**चन्द्रगुप्त**—मैं रक्षा करूँगा ! पहले महामंत्री आचार्य चाणक्य के प्रश्नों के उत्तर दे दो।

**वसुगुप्त**—मैं उत्तर देने में असमर्थ हूँ, सम्राट् ! कौमुदी महोत्सव के इस अवसर पर मैंने अधिक आसव पान कर लिया है। इसी कारण मेरे उत्तर ठीक नहीं हैं।

**चाणक्य**—कोई हानि नहीं, समाहर्त्ता ! मैं तुम्हें और भी आसव पान करने के लिए दूँगा जिससे तुम्हारे लिए यह कौमुदी महोत्सव और भी मंगलमय हो।

**वसुगुप्त**—मैं अधिक आसव पान करना राजधर्म के प्रतिकूल समझता हूँ, महामंत्री !

**चाणक्य**—अभी तुमने कहा कि अधिक आसव पान करने के कारण मैं ठीक उत्तर नहीं दे सकता। अब कहते हो, मैं अधिक आसव पान करना राजधर्म के प्रतिकूल समझता हूँ।

**वसुगुप्त**—मैं राजनीति के रहस्य आपके समक्ष खोलने में असमर्थ हूँ।

**चाणक्य**—बार-बार राजनीति ! प्रत्येक प्रश्न में राजनीति ! राज्य का समाहर्त्ता राज्य के महामंत्री से राजनीति के रहस्य नहीं कहना चाहता ? और आसव पान करने में भी तुम्हारी राजनीति है ! हाँ, तुम्हारी नहीं, मेरी है । समाहर्त्ता ! यदि तुम नहीं चाहते तो मैं तुमसे राजनीति के रहस्य खोलने के लिए नहीं कहूँगा । कविता की बातें कहूँगा । कविता की बातें कर सकते हो ? उत्तर दो, जो आसव वन्य कुसुमों की सुगंधि लिये हुए है, वह इतना मादक क्यों होता है ?

**वसुगुप्त**—मैं नहीं जानता, महामंत्री !

**चाणक्य**– तुम नहीं जानते ? मैं जानता हूँ । जो आसव वन्य कुसुमों की सुगंधि लिए हुए है वह इतना मादक इसलिए है कि उसे सुन्दरियाँ अपने हाथ से पान कराती हैं, ऐसी सुन्दरियाँ जिनके नेत्रों में आसव है । तुम्हारे आसव को देखते हुए अपने नेत्रों का आसव उसमें ढाल कर उसे और भी मादक बना देती हैं ।

**वसुगुप्त**—आप तो राजनीति और कविता दोनों में पारंगत हैं, महामंत्री !

**चाणक्य**—चाणक्य की सूखी शिराओं में कविता कहाँ ! किन्तु तुम्हारी इच्छानुसार मैं राजनीति के रहस्यों के बदले तुम्हें कविता देना चाहता हूँ । एक बात और पूछूँ ? सुन्दरियों के नेत्रों में अधिक मादकता है या अधरों में ।

**वसुगुप्त**—इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन है, महामंत्री !

**चाणक्य**—राजनीति के रहस्यों से भी कठिन, समाहर्त्ता ! जिसमें तुम पारंगत हो ? अमरावती के अंतपाल और महाराज नंद के वसंतोत्सव में सम्मिलित होने वाले वसुगुप्त के लिए यह प्रश्न कठिन नहीं है । महाराज नंद के वसंतोत्सव में 'अनंग क्रीड़ा' का आयोजन हुआ था ?

**वसुगुप्त**—हाँ, महामंत्री !

**चाणक्य**—और तुम उसमें सम्मिलित हुए थे। तव तो तुम जानते ही होगे कि सुन्दरियों के नेत्रों से अधिक अधरों में मादकता होती है। होती है समाहर्त्ता ? ( **तीव्र स्वर में** ) उत्तर दो।

**वसुगुप्त**—हाँ, महामंत्री !

**चाणक्य**—तो जो आसव सुन्दरियाँ अपने अधरों से लगाकर देती हैं उसमें और भी अधिक मादकता होती है ? (**तीव्र स्वर में**) उत्तर दो।

**वसुगुप्त**—हाँ, महामंत्री !

**चाणक्य**—अब मुझे तुमसे कोई प्रश्न नहीं पूछना। तुमसे इतने प्रश्न पूछ कर मैंने तुम्हें जो कष्ट दिया है, उसके लिए मैं तुम्हें पुरस्कार देना चाहता हूँ। और वह पुरस्कार यह है कि तुम राजनर्त्तकी अलका के अधरों के स्पर्श किये गए मादक आसव का एक घूंट....

**अलका**—( **विह्वल होकर** ) क्षमा कीजिए महामंत्री ! मैं आसव का स्पर्श नहीं करूँगी। आज तक न मैंने आसव पान किया है और न पान कराया है। मैं क्षमा की भीख माँगती हूँ, महामंत्री !

**चाणक्य**—कौमुदी महोत्सव में पुरस्कार मिलता है, देवी ! भीख नहीं। ( **पुकार कर** ) सैनिक ? ( **सैनिक का प्रवेश** ) आसव का एक चषक उपस्थित करो।

**सैनिक**—जो आज्ञा ! [ **प्रस्थान** ]

**अलका**—(**बिलखकर**) महामंत्री, मेरा जीवन अभिशाप से परिपूर्ण है। मैं राजनर्त्तकी बन कर नारी भी नहीं रह पायी। मैं संसार की सबसे बड़ी विडम्बना हूँ, मैं पाप की कालिमा हूँ, मैं रौरव की ज्वाला हूँ ! मैं....मैं....

**चाणक्य**—नहीं देवी ! तुम महाराज नंद की राजनर्त्तकी हो ! अनिंद्य सुन्दरी, कलापूर्ण नृत्य की सम्राज्ञी ! हाँ, मुझे दुःख है कि तुम्हारा

जीवन........( **सैनिक चषक लेकर आता है।** ) क्या ले आए चषक ? हाँ, मैं अपने साथ ही तो लाया था, आसव और चषक लाओ ! तुम इसका पान करो, राजनर्त्तकी !

**अलका**—महामंत्री ! मुझे आसव पान न कराओ, मुझे विष दे दो ! भयानक हलाहल दे दो ! उससे शान्ति मिलेगी ! मेरी जिह्वा पर सर्प-दंशन, चाहिए सर्प-दंशन, महामंत्री !

**चाणक्य**—सर्प-दंशन तुम्हें नहीं चाहिए, राजनर्त्तकी ! किसी और को चाहिए। (**सैनिक से**) सैनिक ! बलपूर्वक यह आसव राजनर्त्तकी को पान कराओ। ( **सैनिक राजनर्त्तकी को बलपूर्वक आसव पान कराता है। अनिच्छापूर्ण लड़खड़ाती हुई साँस में मदिरा पान करने की आवाज़** ) बस, रहने दो ! ( **सैनिक राजनर्त्तकी के अधरों से चषक हटाता है।** ) अब यह आसव राजनर्त्तकी के अधरों को छूकर और भी मादक बन गया। अब कौमुदी महोत्सव के समाहर्त्ता वसुगुप्त को उनका पुरस्कार चाहिए। सैनिक ! यह शेष आसव समाहर्त्ता वसुगुप्त पान करेंगे।

**वसुगुप्त**—सम्राट् ! मेरी रक्षा कीजिए। मैं वह आसव पान नहीं करूँगा, नहीं करूँगा !

**चाणक्य**—सैनिक ! वसुगुप्त को शेष आसव बलपूर्वक पान कराओ।

[ **सैनिक बलपूर्वक आसव पान कराते हैं। घुटते हुए कंठ की आवाज़** ]

**वसुगुप्त**—( **लड़खड़ाते शब्दों में** ) ओह ! घोर....हलाहल....आग की....ज्वाला ! सर्प-दंशन....सर्प....दंशन....महामंत्री, चाणक्य ! तुम....राज....मंत्री....राक्षस....पर....विजयी....हुए। कौमुदी महो....त्....सव....नहीं....हो....सका....!....अलका....मुझे....क्षमा

कौमुदी....महो....त्....सव .... कौ....मु....दी....महो ....त्....स ....व

[ प्राण छूट जाते हैं ]

**चन्द्रगुप्त**—आह विष-कन्या ! राजनर्त्तकी विष-कन्या है ! अधरों से स्पर्श किया गया आसव........हलाहल........बन गया ! समाहर्त्ता....

**चाणक्य**—समाहर्त्ता अब इस संसार में नहीं है, चन्द्रगुप्त ! अब अलका....

**अलका**—सम्राट् क्षमा कीजिए ! महामंत्री, प्राणों की भिक्षा दीजिए ! मैं निर्दोष हूँ ! मैं निर्दोष हूँ ! सम्राट् ? मैं आपके चरण चूम कर....( **चरणों पर गिरने के लिए आगे बढ़ती है ।** )

**चाणक्य**—पीछे हटो ! पीछे हटो, चन्द्रगुप्त ! ( **चन्द्रगुप्त पीछे हटते हैं ।** ) यह तुम्हारे पैरों में अपने दाँत चुभा कर तुम्हें मृत्यु-मुख में ढकेल देगी । यह इसका अन्तिम प्रयोग है । नारी रूप में भयानक सर्पिणी विष-कन्या ! राजमंत्री राक्षस ने कौमुदी महोत्सव का प्रस्ताव वसुगुप्त से कराकर असावधान चन्द्रगुप्त को विष-कन्या के प्रयोग से नष्ट करने की चाल सोची थी । सैनिको ! राजनर्त्तकी को वन्दी करो । इसका प्रयोग शत्रु पर ही किया जायेगा । ( **सैनिक राजनर्त्तकी को बन्दी करते हैं ।** ) समाहर्त्ता वसुगुप्त राक्षस का गुप्तचर था और राजनर्त्तकी अलका विषकन्या ! इस सत्य का उद्घाटन मैंने अपनी इच्छा से किया है और इस उद्घाटन के अनन्तर मैं एक क्षण भी यहाँ नहीं ठहर सकूँगा ! मेरा मार्ग छोड़ दो । हटो ! तपोवन मेरी प्रतीक्षा कर रहा है । चन्द्रगुप्त ! अपने विश्वास-पात्र समाहर्त्ता वसुगुप्त का

अन्तिम संस्कार और कौमुदी महोत्सव का आयोजन दोनों साथ-साथ करो और अपना राज्य सम्हालो ।

[ प्रस्थान ]

**चन्द्रगुप्त**—( **विह्वल स्वरों में** ) आर्य चाणक्य ! महामंत्री चाणक्य ! चन्द्रगुप्त को तुम्हारी आवश्यकता है ! महामंत्री चाणक्य के विना यह राज्य नष्ट हो जायेगा, चन्द्रगुप्त नष्ट हो जायेगा ! महामंत्री चाणक्य ! कौमुदी महोत्सव नहीं होगा ! (**चाणक्य के पीछे शीघ्रता से जाते हैं । उनको ध्वनि क्रमशः क्षीण होती सुनायी पड़ती है ।**) कौमुदी महोत्सव नहीं होगा !!....कौमुदी महोत्सव नहीं होगा !!!

Acc. No. 39648
Date 18/5/72
SIMLA

साहित्य भवन प्रा० लि०
इलाहाबाद

Library IIAS, Shimla
H 812.8 V 59 K
00039648